आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

(Major Trends of Modern Hindi Poetry)

कुंदन साही

आधुनिक हिंदी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

आधुनिक हिंदी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

(Major Trends of Modern Hindi Poetry)

कुंदन साही

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5503-8

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

भारतीय साहित्य में परिवर्तन एवं नवीनता के लक्षण उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही दिखाई देने लगे थे। हिंदी साहित्य में भी परिवर्तन हुआ। नयापन आया। इसे नई दिशाएँ मिलीं। नए रूप प्राप्त हुए। नए आयाम मिले। सन 1850 के आस-पास पाश्चात्य प्रभाव परिलक्षित हुए। मुगलों ने सल्तनत बख्श दी। सत्ता अंग्रेजों के हाथ में आ गई। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ परिवर्तित हुईं। ऐसी नितांत नई बदलती हुई परिस्थितियों ने युग को प्रभावित किया। युग भी बदला। अत: परिवर्तित युग में साहित्य का स्वर भी परिवर्तित होना स्वाभाविक था। सीमित वर्ण्य-विषय एवं लक्षण-उदाहरण ग्रंथ की परिसीमा को लाँघकर हिंदी साहित्य में आधुनिक काल आया। आधुनिक हिंदी कविता की यात्रा को कभी आदर्शवाद ने प्रभावित किया तो कभी अस्तित्त्ववाद ने। कभी यह अतियथार्थवाद से प्रभावित हुई तो कभी मानवतावादी विचारधारा से। मार्क्सवादी विचारधारा, समाजवाद एवं साम्यवाद, प्रतीकवाद और बिंबवाद आदि से भी आधुनिक हिंदी कविता प्रभावित है। साथ ही, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण परमहंस मिशन, आर्य समाज, गांधीवादी विचारधारा आदि भारतीय जीवन दृष्टियाँ समावेशित हैं। भारतीय आधुनिक युग की वैचारिक पृष्ठभूमि में पाश्चात्य एवं भारतीय विचारों का भावनात्मक मिश्रण मिलता है। बुद्धि एवं हृदय के समन्वित मिश्रण से आधुनिक हिंदी कविता संपन्न है, समृद्ध हुई है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**विषय बोध**	**1**
	हिंदी काव्य का विकास	1
	कार्य में प्रवृत्ति	4
	मनोरंजन और स्वभाव-संशोधन	5
	कविता की आवश्यकता	7
	सृष्टि-सौन्दर्य	7
	कविता की भाषा	9
	हिंदी-काव्य में राष्ट्रीय विचारधारा	11
	श्रुति सुखदता	13
	अलंकार	15
	मनोरंजन और स्वभाव-संशोधन	18
	आधुनिक काव्य धारा	20
	भारतेंदु हरिश्चंद्र युग की कविता (1850-1900)	20
	छायावादी युग की कविता (1920-)	21
	प्रगतिवादी युग की कविता (1930-)	21
2.	**भारतेंदु हरिश्चंद्र युग की कविता**	**23**
	भारतेंदु युग के काव्य की प्रवृत्तियाँ (विशेषताएँ)	24
	भारतेन्दु हरिश्चंद्र	27
	जीवन परिचय	28

महत्वपूर्ण कार्य 35
3. पं महावीर प्रसाद द्विवेदी युग की कविता 56
द्विवेदी युग की प्रवृत्तियाँ 56
महावीर प्रसाद द्विवेदी 60
प्रकाशित कृतियाँ 61
वर्ण्य विषय 65
महत्त्वपूर्ण कार्य 67
अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' 67
जीवनवृत 68
रचनाएँ 68
काव्यगत विशेषताएँ 69
रत्नाकर जी की रचनाएँ 74
जीवन-परिचय 77
काव्य-लेखन का आरम्भ 78
सम्मान एवं उपाधियाँ 82
4. छायावादी युग की कविता 84
छायावाद की प्रवृत्तियां 85
जयशंकर प्रसाद 94
जीवन परिचय 95
कृतियाँ 96
सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' 100
प्रकाशित कृतियाँ 102
प्रारंभिक जीवन और परिवार 107
परिचित और आत्मीय 109
प्रसिद्धि के पथ पर 110
5. उत्तर-छायावाद युग 118
उत्तरछायावाद की काव्य प्रवृत्तियाँ 120
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' 121
जीवन परिचय 122
6. प्रगतिवादी युग की कविता 124
प्रगतिवादी कविता की प्रवृत्तियां 125

नरेन्द्र शर्मा 130
जीवन परिचय 130
7. प्रयोगवाद-नयी कविता युग की कविता 131
प्रयोगवादी कविता की प्रवृत्तियां 131
सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' 142
जीवन परिचय 143
कार्यक्षेत्र 143
प्रमुख कृतियां 143
भारतभूषण अग्रवाल 147
जीवन परिचय 157
सर्वेश्वर का रचना संसार 157
कुँवर नारायण 159
जीवन परिचय 160
साहित्य यात्रा 160
समालोचना 161

1

विषय बोध

कविता से मनुष्य-भाव की रक्षा होती है। सृष्टि के पदार्थ या व्यापार-विशेष को कविता इस तरह व्यक्त करती है, मानो वे पदार्थ या व्यापार-विशेष नेत्रों के सामने नाचने लगते हैं। वे मूर्तिमान दिखाई देने लगते हैं। उनकी उत्तमता या अनुत्तमता का विवेचन करने में बुद्धि से काम लेने की जरूरत नहीं पड़ती। कविता की प्रेरणा से मनोवेगों के प्रवाह जोर से बहने लगते हैं। तात्पर्य यह है कि कविता मनोवेगों को उत्तेजित करने का एक उत्तम साधन है। यदि क्रोध, करुणा, दया, प्रेम आदि मनोभाव मनुष्य के अन्तःकरण से निकल जाएँ, तो वह कुछ भी नहीं कर सकता। कविता हमारे मनोभावों को उच्छ्वासित करके हमारे जीवन में एक नया जीव डाल देती है। हम सृष्टि के सौन्दर्य को देखकर मोहित होने लगते हैं। कोई अनुचित या निष्ठुर काम हमें असह्य होने लगता है। हमें जान पड़ता है कि हमारा जीवन कई गुना अधिक होकर समस्त संसार में व्याप्त हो गया है।

हिंदी काव्य का विकास

हिंदी पद्य हिंदी साहित्य के आदिकाल से आज तक अखंड रूप में प्रवाहित होती रही है। इसका आदिम रूप मध्यकाल के राजपूत शासकों के दरबारों और अपभ्रंश में मिश्रित भाषा में पाते हैं। राजाश्रय के कवि अपने आश्रयदाताओं के ऐश्वर्यमय जीवन तथा युद्ध में उनकी वीरता को बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करते थे। इन काव्यों में वीर और शृंगार रसों की प्रधानता होती थी। प्रायः इनमें ऐतिहासिक प्रामाणिकता का अभाव रहता था। पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव

रासो, हम्मीर रासो आदि तत्कालीन राजाओं के जीवन-चरित्र पर अधारित महाकाव्य, प्रबंधकाव्य तथा गीतकाव्य के अतिरिक्त उस समय में जैन-बौद्ध श्रमणों द्वारा नीति प्रधान 'दूहे' भी रचे गए थे।

तेरहवीं सदी तक काव्य-रचना का यही रवैया रहा था। इसके साथ मैथिली भाषा में विद्यापति के लिखे भक्ति और शृंगार के फुटकर पद तथा खड़ी बोली में लिखित अमीर खुसरो की सूक्तियाँ व पहेलियाँ भी मिलती हैं। चौदहवीं सदी तक हिंदू-राजाओं की शक्ति की शिथिलता के साथ वीर-काव्यों का भी ह्रास होता गया। इस्लाम द्वारा हिंदू राजाओं की धार्मिक और राजनीतिक पराजय के कारण हिंदू जाति में धार्मिक तथा सामाजिक संकीर्णता बड़ी, मनों में निराशा का भाव बढ़ता गया।

धार्मिक कट्टरता में इस्लाम भी पीछे नहीं था, मगर हिंदू और मुस्लमान, दोनों युद्ध से थक चुके थे। मुस्लमान भारत के निवासी होना चाहते थे। दोनों जातियों की धार्मिक संकीर्णता तथा पड़ोसी भाव की टकराहट को कबीर ने अपने अनोखे अंदाज में प्रस्तुत किया था।

इस युग के सैकड़ों हिंदू-मुस्लिम संतों ने निर्गुण-सगुण तथा प्रेममार्गी भक्ति की करीब तीन सौ सालों तक ऐसी गंगा बहाई कि अकबर का शासन हिंदू- मुस्लिम भाईचारे का प्रतीक बनकर उभरा और निखरकर सर्वत्र फैल गया। वही भक्तिकाल कालान्तर में हिंदी कविता का 'स्वर्णकाल' कहलाया।

इनमें निर्गुणवादी संप्रदाय के संतों ने, जिनमें कबीर, नानक, दादू आदि मुख्य थे, अपनी कविताओं के माध्यम से निर्भयता के साथ दोनों जातियों की धार्मिक, सामाजिक संकीर्णताओं तथा कर्मकांडों का जनवाणी में विरोध किया। वहीं अद्वैतवाद और एकेश्वरवाद के मिलन द्वारा उपासना-क्षेत्र में दोनों में एकता पैदा करने की कोशिश की। उनकी वाणी में स्पष्टता और सत्यता थी।

अत: साधारण जनता पर उनके नैतिक उपदेशों का प्रभाव भी पड़ा। इस प्रकार संत-साहित्य से हिंदी कविता का आत्मबल बढ़ा। दूसरी तरफ, सूफी-संप्रदाय के मुस्लिम संतों ने, जिनमें जायसी, कुतबन मझन उसमान आदि मुख्य थे। इन सूफी संतों में लौकिक हिंदू-प्रेमकथाओं को प्रतीक बनाकर आत्मा-परमात्मा के मिलन का वर्णन किया।

मसनवी शैली में जनभाषा का प्रयोग करते हुए लिखित इन कवियों के प्रबंध काव्यों में इसके वास्तविक जनपक्ष के यथार्थ का भी चित्रण हुआ है। ये संत भी हिंदू-मुस्लिम समन्वय के समर्थक रहे थे। हिंदी कविता में गीत और

प्रबंध काव्य-पद्धति की नींव उक्त हिंदू-मुस्लिम संतों के द्वारा पड़ी तथा काव्य में रहस्यवाद का भी पुट आया। निर्गुणवादी संतों की वाणी वीरगाथाकाल के युद्धों से त्रस्त साधारण जनता को धार्मिक आशा तो प्रदान कर सकी, किंतु सामाजिक पुनर्गठन कम सहायक रहा।

इस सामाजिक अराजकता के मार्जन के लिए सगुणवादी भक्ति-आंदालेन का आविर्भाव हुआ, जो दक्षिण से उत्तर की ओर बहा था। आचार्य रामानुज तथा बल्लभाचार्य की शिष्य-परंपरा के राम और कृष्णभक्त कवियों ने, जिसमें तुलसी, सूर, मीरा तथा अष्टछाप के कवि मुख्य थे, अपनी मुक्तक तथा प्रबंधबद्ध काव्य द्वारा सामाजिक स्थिरता पैदा की तथा हिंदी-भाषा और साहित्य को कलात्मक ऊँचाइयाँ प्रदान कीं।

इन सगुण भक्त-कवियों की सेवा में ब्रज और अवधी भाषाओं में हिंदी-कवियों का सर्वांगीण विकास हुआ। इन कवियों की मुक्तक तथा प्रबंध रचनाओं में भगवान् के प्रतिनिधि राम और कृष्ण इनसान बनकर अवतरित होते हैं, सामाजिक दु:ख-सुखों में रमते हैं, अपनी शक्ति, शील तथा सौंदर्य से समाज का रंजन करते हैं तथा समाज को व्यवस्थित और मर्यादित बनाते हैं।

इन कवियों ने जनता के सम्मुख वह आदर्श रखा, जिनके बल पर वे अपने लोक और परलोक दोनों को बना सके। कृष्ण-भक्ति ने हिंदी कविता को तन्मयता का उन्नत भाव-भूमि पर पहुंचाया। यह महाकवि सूरदास की सफलता थी। तुलसी के 'रामचरितमानस' ने तो हिंदी कविता को भावपक्ष और कलापक्ष के सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित किया।

मुगल शासन के शांत और संपन्न वातावरण में हिंदी कविता पुन: राजदरबारों की शोभा बढ़ने लगी। वहाँ आचार्यगण हिंदी के तब तक रचित लक्ष्य-ग्रंथों का विवेचन तथा काव्य के लक्षण तथा रीति का नियमन करते रहे, मगर मुगलकालीन विलासिता के प्रभाव से इस काल में नायिका-भेद, नखशिख-वर्णन तथा नागरिक रचनाएँ प्रचुर मात्रा में रची।

भक्तिकाल की राधा और कृष्ण इस काल में साधारण नायक-नायिका बन गए। भूषण जैसे एकाध कवियों ने वीररस की सुंभि भी बजाई। इस काल के कवियों में , देव, मतिराम, पद्याकर आदि मुख्य हैं। रीतिकाव्य की कलात्मकता का रीतिकाल में चमत्कारपूर्ण विकास हुआ था।

अंग्रेजों के शासनकाल में हिंदी कविता में नवीन परिवर्तन होने लगे। कविता की खड़ी बोली, जिसमें संस्कृतनिष्ठ भाषा-छंदों का प्रयोग होने लगा।

द्विवेदी युग में उपदेश नीतिबद्ध रतिवृत्तों के खंड और प्रबंधकाव्य बहुतायत में रचे गए। देश में लड़ाई का वातावरण होने से कविता में राष्ट्रीय भावना को प्राधान्य मिला। गुप्त, नवीन, एक भारतीय, आत्मा, दिनकर आदि की कविताओं में देश-प्रेम, त्याग, और विप्लव की भावनाएँ व्यक्त हुईं।

भाव तथा अभिव्यक्ति की स्थूलता के परिष्कार के लिए छायावादी काव्य-पद्धति का आगमन हुआ, जिसमें प्रकृति में आत्म-प्रसारपरक तथा भावात्मक मुक्तक, गीत काव्य अधिक लिखे गए जिसमें रहस्यात्मक अनुभूतियों को भी स्थान मिला। छायावाद स्वप्निल पलायन की निरर्थकता को अति की स्थिति में काव्य में निराशावाद और का भी प्रवेश हुआ।

इन सबकी प्रतिक्रिया में मार्क्सवाद से अनुप्राणित प्रगतिवादी प्रयोगवादी कविताएँ भी रची गईं। प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, बच्चन, भगवतीचरण वर्मा, दिनकर, अज्ञेय आदि उल्लेखनीय काव्यकार रहे। इस प्रकार हिंदी कविता देश-विदेशों के भाषा साहित्यों से प्रभाव ग्रहण करती, भारतीय समाज के अनुकूल सतत विकास-पथ पर गतिमान है।

कार्य में प्रवृत्ति

कविता की प्रेरणा से कार्य में प्रवृत्ति बढ़ जाती है। केवल विवेचना के बल से हम किसी कार्य में बहुत कम प्रवृत्त होते हैं। केवल इस बात को जानकर ही हम किसी काम के करने या न करने के लिए प्रायः तैयार नहीं होते कि वह काम अच्छा है या बुरा, लाभदायक है या हानिकारक। जब उसकी या उसके परिणाम की कोई ऐसी बात हमारे सामने उपस्थित हो जाती है, जो हमें आह्लाद, क्रोध और करुणा आदि से विचलित कर देती है, तभी हम उस काम को करने या न करने के लिए प्रस्तुत होते हैं। केवल बुद्धि हमें काम करने के लिए उत्तेजित नहीं करती। काम करने के लिए मन ही हमको उत्साहित करता है। अतः कार्य-प्रवृत्ति के लिए मन में वेग का आना आवश्यक है। यदि किसी से कहा जाये कि अमुक देश तुम्हारा इतना रुपया प्रतिवर्ष उठा ले जाता है, इसी से तुम्हारे यहाँ अकाल और दारिद्र्य बना रहता है, तो सम्भव है कि उस पर कुछ प्रभाव न पड़े। पर यदि दारिद्र्य और अकाल का भीषण दृश्य दिखाया जाए, पेट की ज्वाला से जले हुए प्राणियों के अस्थिपंजर सामने पेश किए जाएं और भूख से तड़पते हुए बालक के पास बैठी हुई माता का आर्त्तस्वर सुनाया जाए तो वह मनुष्य क्रोध और करुणा से विह्वल हो उठेगा और इन बातों को दूर करने का

यदि उपाय नहीं तो संकल्प अवश्य करेगा। पहले प्रकार की बात कहना राजनीतिज्ञ का काम है और पिछले प्रकार का दृश्य दिखाना, कवि का कर्त्तव्य है। मानव-हृदय पर दोनों में से किसका अधिकार अधिक हो सकता है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं।

मनोरंजन और स्वभाव-संशोधन

कविता के द्वारा हम संसार के सुख, दु:ख, आनन्द और क्लेश आदि यथार्थ रूप से अनुभव कर सकते हैं। किसी लोभी और कंजूस दुकानदार को देखिए, जिसने लोभ के वशीभूत होकर क्रोध, दया, भक्ति, आत्माभिमान आदि मनोविकारों को दबा दिया है और संसार के सब सुखों से मुँह मोड़ लिया है अथवा किसी महाक्रूर राजकर्मचारी के पास जाइए, जिसका हृदय पत्थर के समान जड़ और कठोर हो गया है, जिसे दूसरे के दु:ख और क्लेश का अनुभव स्वप्न में भी नहीं होता। ऐसा करने से आपके मन में यह प्रश्न अवश्य उठेगा कि क्या इनकी भी कोई दवा है। ऐसे हृदयों को द्रवीभूत करके उन्हें अपने स्वाभाविक धर्म पर लाने की सामर्थ्य काव्य ही में है। कविता ही उस दुकानदार की प्रवृत्ति भौतिक और आध्यात्मिक सृष्टि के सौन्दर्य की ओर ले जाएगी, कविता ही उसका ध्यान औरों की आवश्यकता की ओर आकर्षित करेगी और उनकी पूर्ति करने की इच्छा उत्पन्न करेगी, कविता ही उसे उचित अवसर पर क्रोध, दया, भक्ति, आत्माभिमान आदि सिखावेगी। इसी प्रकार उस राजकर्मचारी के सामने कविता ही उसके कार्यों का प्रतिबिम्ब खींचकर रखेगी और उनकी जघन्यता और भयंकरता का आभास दिखलावेगी तथा दैवी क्रिंवा अन्य मनुष्यों द्वारा पहुँचाई हुई पीड़ा और क्लेश के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंश को दिखलाकर उसे दया दिखाने की शिक्षा देगी। प्राय: लोग कहा करते हैं कि कविता का अन्तिम उद्देश्य मनोरंजन है, पर मेरी समझ में मनोरंजन उसका अन्तिम उद्देश्य नहीं है। कविता पढ़ते समय मनोरंजन अवश्य होता है, पर इसके सिवा कुछ और भी होता है। मनोरंजन करना कविता का प्रधान गुण है। इससे मनुष्य का चित्त एकाग्र हो जाता है, इधर-उधर जाने नहीं पाता। यही कारण है कि नीति और धर्म-सम्बन्धी उपदेश चित्त पर वैसा असर नहीं करते जैसा कि किसी काव्य या उपन्यास से निकली हुई शिक्षा असर करती है। केवल यही कहकर कि 'परोपकार करो' 'सदैव सच बोलो' 'चोरी करना महापाप है' हम यह आशा कदापि नहीं कर सकते कि कोई अपकारी मनुष्य परोपकारी हो जाएगा, झूठा सच्चा हो जाएगा और चोर चोरी करना छोड़

देगा, क्योंकि पहले तो मनुष्य का चित्त ऐसी शिक्षा ग्रहण करने के लिए उद्यत ही नहीं होता, दूसरे मानव-जीवन पर उसका कोई प्रभाव अंकित हुआ न देखकर वह उनकी कुछ परवाह नहीं करता, पर कविता अपनी मनोरंजक शक्ति के द्वारा पढ़ने या सुनने वाले का चित्त उचटने नहीं देती। उसके हृदय आदि अत्यन्त कोमल स्थानों को स्पर्श करती है और सृष्टि में उक्त कर्मों के स्थान और सम्बन्ध की सूचना देकर मानव जीवन पर उनके प्रभाव और परिणाम को विस्तृत रूप से अंकित करके दिखलाती है। इन्द्रासन खाली कराने का वचन देकर, हूर और गिलमा का लालच दिखाकर, यमराज का स्मरण दिलाकर और दोजख की जलती हुई आग की धमकी देकर हम बहुधा किसी मनुष्य को सदाचारी और कर्त्तव्य-परायण नहीं बना सकते। बात यह है कि इस तरह का लालच या धमकी ऐसी है जिससे मनुष्य परिचित नहीं और जो इतनी दूर की है कि उसकी परवाह करना मानव-प्रकृति के विरुद्ध है। सदाचार में एक अलौकिक सौन्दर्य और माधुर्य होता है। अतः लोगों को सदाचार की ओर आकर्षित करने का प्रकृत उपाय यही है कि उनको उसका सौन्दर्य और माधुर्य दिखाकर लुभाया जाए, जिससे वे बिना आगा-पीछा सोचे मोहित होकर उसकी ओर ढल पड़ें। मन को हमारे आचार्यों ने ग्यारहवीं इन्द्रिय माना है। उसका रंजन करना और उसे सुख पहुँचाना ही यदि कविता का धर्म माना जाए तो कविता भी केवल विलास की सामग्री हुई। परन्तु क्या हम कह सकते हैं कि वाल्मीकि का आदि-काव्य, तुलसीदास का रामचरितमानस, या सूरदास का सूरसागर विलास की सामग्री है? यदि इन ग्रन्थों से मनोरंजन होगा, तो चरित्र-संशोधन भी अवश्य ही होगा। खेद के साथ कहना पड़ता है कि हिन्दी भाषा के अनेक कवियों ने शृंगार रस की उन्माद कारिणी उक्तियों से साहित्य को इतना भर दिया है कि कविता भी विलास की एक सामग्री समझी जाने लगी है। पीछे से तो ग्रीष्मोपचार आदि के नुस्खे भी कवि लोग तैयार करने लगे। ऐसी शृंगारिक कविता को कोई विलास की सामग्री कह बैठे तो उसका क्या दोष? सारांश यह कि कविता का काम मनोरंजन ही नहीं कुछ और भी है। चरित्र-चित्रण द्वारा जितनी सुगमता से शिक्षा दी जा सकती है, उतनी सुगमता से किसी और उपाय द्वारा नहीं। आदि-काव्य रामायण में जब हम भगवान् रामचन्द्र के प्रतिज्ञा-पालन, सत्यव्रताचरण और पितृभक्ति आदि की छटा देखते हैं, भारत के सर्वोच्च स्वार्थत्याग और सर्वांगपूर्ण सात्विक चरित्र का अलौकिक तेज देखते हैं, तब हमारा हृदय श्रद्धा, भक्ति और आश्चर्य से स्तम्भित हो जाता है। इसके विरुद्ध जब हम रावण को दुष्टता और उद्दंडता का चित्र देखते

हैं तब समझते हैं कि दुष्टता क्या चीज है और उसका प्रभाव और परिणाम सृष्टि में क्या है। अब देखिए कविता द्वारा कितना उपकार होता है। उसका काम भक्ति, श्रद्धा, दया, करुणा, क्रोध और प्रेम आदि मनोवेगों को तीव्र और परिमार्जित करना तथा सृष्टि की वस्तुओं और व्यापारों से उनका उचित और उपयुक्त सम्बन्ध स्थिर करना है।

कविता की आवश्यकता

कविता इतनी प्रयोजनीय वस्तु है कि संसार की सभ्य और असभ्य सभी जातियों में पाई जाती है। चाहे इतिहास न हो, विज्ञान न हो, दर्शन न हो, पर कविता अवश्य ही होगी। इसका क्या कारण है? बात यह है कि संसार के अनेक कृत्रिम व्यापारों में फंसे रहने से मनुष्य की मनुष्यता जाती रहने का डर रहता है। अतएव मानुषी प्रकृति को जागृत रखने के लिए ईश्वर ने कविता रूपी औषधि बनाई है। कविता यही प्रयत्न करती है कि प्रकृति से मनुष्य की दृष्टि फिरने न पावे। जानवरों को इसकी जरूरत नहीं। हमने किसी उपन्यास में पढ़ा है कि एक चिड़चिड़ा बनिया अपनी सुशीला और परम रूपवती पुत्रवधू को अकारण निकालने पर उद्यत हुआ। जब उसके पुत्र ने अपनी स्त्री की ओर से कुछ कहा तब वह चिढ़कर बोला, 'चल चल! भोली सूरत पर मरा जाता है' आह! यह कैसा अमानुषिक बर्ताव है! सांसारिक बन्धनों में फंसकर मनुष्य का हृदय कभी-कभी इतना कठोर और कुंठित हो जाता है कि उसकी चेतनता - उसका मानुषभाव - कम हो जाता है। न उसे किसी का रूप माधुर्य देखकर उस पर उपकार करने की इच्छा होती है, न उसे किसी दीन-दुखिया की पीड़ा देखकर करुणा आती है, न उसे अपमानसूचक बात सुनकर क्रोध आता है। ऐसे लोगों से यदि किसी लोमहर्षण अत्याचार की बात कही जाए, तो मनुष्य के स्वाभाविक धर्मानुसार, वे क्रोध या घृणा प्रकट करने के स्थान पर रुखाई के साथ यही कहेंगे - "जाने दो, हमसे क्या मतलब, चलो अपना काम देखो." याद रखिए, यह महा भयानक मानसिक रोग है। इससे मनुष्य जीते जी मृतवत् हो जाता है। कविता इसी मरज की दवा है।

सृष्टि-सौन्दर्य

कविता सृष्टि-सौन्दर्य का अनुभव कराती है और मनुष्य को सुन्दर वस्तुओं में अनुरक्त करती है। जो कविता रमणी के रूप माधुर्य से हमें आहलादित करती

है, वही उसके अन्त:करण की सुन्दरता और कोमलता आदि की मनोहारिणी छाया दिखा कर मुग्ध भी करती है। जिस बंकिम की लेखनी ने गढ़ के ऊपर बैठी हुई राजकुमारी तिलोत्तमा के अंग प्रत्यंग की शोभा को अंकित किया है, उसी ने आयशा के अन्त:करण की अपूर्व सात्विकी ज्योति दिखा कर पाठकों को चमत्कृत किया है। भौतिक सौन्दर्य के अवलोकन से हमारी आत्मा को जिस प्रकार सन्तोष होता है उसी प्रकार मानसिक सौन्दर्य से भी। जिस प्रकार वन, पर्वत, नदी, झरना आदि से हम प्रफुल्लित होते हैं, उसी प्रकार मानवी अन्त:करण में प्रेम, दया, करुणा, भक्ति आदि मनोवेगों के अनुभव से हम आनंदित होते हैं और यदि इन दोनों पार्थिव और अपार्थिव सौन्दर्यों का कहीं संयोग देख पड़े तो फिर क्या कहना है। यदि किसी अत्यन्त सुन्दर पुरुष या अत्यन्त रूपवती स्त्री के रूप मात्र का वर्णन करके हम छोड़ दें तो चित्र अपूर्ण होगा, किन्तु यदि हम साथ ही उसके हृदय की दृढ़ता और सत्यप्रियता अथवा कोमलता और स्नेह-शीलता आदि की भी झलक दिखावें तो उस वर्णन में सजीवता आ जाएगी। महाकवियों ने प्राय: इन दोनों सौन्दर्यों का मेल कराया है जो किसी-किसी को अस्वाभाविक प्रतीत होता है। किन्तु संसार में प्राय: देखा जाता है कि रूपवान् जन सुशील और कोमल होते हैं और रूपहीन जन क्रूर और दु:शील। इसके सिवा मनुष्य के आंतरिक भावों का प्रतिबिम्ब भी चेहरे पर पड़कर उसे रुचिर या अरुचिर बना देता है। पार्थिव सौन्दर्य का अनुभव करके हम मानसिक अर्थात् अपार्थिव सौन्दर्य की ओर आकर्षित होते हैं। अतएव पार्थिव सौन्दर्य को दिखलाना कवि का प्रधान कर्म है। ==कविता का दुरुपयोग== जो लोग स्वार्थवश व्यर्थ की प्रशंसा और खुशामद करके वाणी का दुरुपयोग करते हैं, वे सरस्वती का गला घोंटते हैं। ऐसी तुच्छ वृत्ति वालों को कविता न करना चाहिए। कविता का उच्चाशय, उदार और नि:स्वार्थ हृदय की उपज है। सत्कवि मनुष्य मात्र के हृदय में सौन्दर्य का प्रवाह बहाने वाला है। उसकी दृष्टि में राजा और रंक सब समान हैं। वह उन्हें मनुष्य के सिवा और कुछ नहीं समझता। जिस प्रकार महल में रहने वाले बादशाह के वास्तविक सद् गुणों की वह प्रशंसा करता है, उसी प्रकार झोंपड़े में रहने वाले किसान के सद्गुणों की भी। श्रीमानों के शुभागमन की कविता लिखना और बात-बात पर उन्हें बधाई देना सत्कवि का काम नहीं। हाँ, जिसने नि:स्वार्थ होकर और कष्ट सहकर देश और समाज की सेवा की है, दूसरों का हित साधन किया है, धर्म का पालन किया है, ऐसे परोपकारी महात्मा का गुण गान करना उसका कर्त्तव्य है।

कविता की भाषा

मनुष्य स्वभाव ही से प्राचीन पुरुषों और वस्तुओं को श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। पुराने शब्द हम लोगों को मालूम ही रहते हैं। इसी से कविता में कुछ न कुछ पुराने शब्द आ ही जाते हैं। उनका थोड़ा-बहुत बना रहना अच्छा भी है। वे आधुनिक और पुरातन कविता के बीच सम्बन्ध सूत्र का काम देते हैं। हिन्दी में 'राजते हैं' 'गहते हैं' 'लहते हैं' 'सरसाते हैं' आदि प्रयोगों का खड़ी बोली तक की कविता में बना रहना कोई अचम्भे की बात नहीं। अँग्रेजी कविता में भी ऐसे शब्दों का अभाव नहीं, जिनका व्यवहार बहुत पुराने जमाने से कविता में होता आया है। 'Main* ^Swain' आदि शब्द ऐसे ही हैं। अंग्रेजी कविता समझने के लिए इनसे परिचित होना पड़ता है, पर ऐसे शब्द बहुत थोड़े आने चाहिए, वे भी ऐसे जो भद्दे और गंवारू न हों। खड़ी बोली में संयुक्त क्रियाएँ बहुत लंबी होती हैं, जैसे - "लाभ करते हैं," "प्रकाश करते हैं" आदि। कविता में इनके स्थान पर "लहते हैं" "प्रकाशते हैं" कर देने से कोई हानि नहीं, पर यह बात इस तरह के सभी शब्दों के लिए ठीक नहीं हो सकती। कविता में कही गई बात हृदयपटल पर अधिक स्थायी होती है। अतः कविता में प्रत्यक्ष और स्वभावसिद्ध व्यापार-सूचक शब्दों की संख्या अधिक रहती है। समय बीता जाता है, कहने की अपेक्षा, समय भागा जाता है, कहना अधिक काव्य सम्मत है। किसी काम से हाथ खींचना, किसी का रुपया खा जाना, कोई बात पी जाना, दिन ढलना, मन मारना, मन छूना, शोभा बरसना आदि ऐसे ही कवि-समय-सिद्ध वाक्य हैं, जो बोल-चाल में आ गए हैं। नीचे कुछ पद्य उदाहरण-स्वरूप दिए जाते हैं -

(क) धन्य भूमि वन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाँव तुम धारा।।-तुलसीदास

(ख) मनहुँ उमगि अंग अंग छवि छलकै।। -तुलसीदास, गीतावलि

(ग) चूनरि चारु चुई सी परै चटकीली रही अंगिया ललचावे

(घ) वीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में बनन में बागन में बगरो बसंत है। -पद्माकर

(ङ) रंग रंग रागन पै, संग ही परागन पै, वृन्दावन बागन पै बसंत बरसो परै।

बहुत से ऐसे शब्द हैं, जिनसे एक ही का नहीं किन्तु कई क्रियाओं का एक ही साथ बोध होता है। ऐसे शब्दों को हम जटिल शब्द कह सकते हैं। ऐसे शब्द वैज्ञानिक विषयों में अधिक आते हैं। उनमें से कुछ शब्द तो एक विलक्षण

ही अर्थ देते हैं और पारिभाषिक कहलाते हैं। विज्ञानवेत्ता को किसी बात की सत्यता या असत्यता के निर्णय की जल्दी रहती है। इससे वह कई बातों को एक मानकर अपना काम चलाता है, प्रत्येक काम को पृथक-पृथक दृष्टि से नहीं देखता। यही कारण है जो वह ऐसे शब्द अधिक व्यवहार करता है, जिनसे कई क्रियाओं से घटित एक ही भाव का अर्थ निकलता है। परन्तु कविता प्राकृतिक व्यापारों को कल्पना द्वारा प्रत्यक्ष कराती है- मानव-हृदय पर अंकित करती है। अतएव पूर्वोक्त प्रकार के शब्द अधिक लाने से कविता के प्रसाद गुण की हानि होती है और व्यक्त किए गए भाव हृदय पर अच्छी तरह अंकित नहीं होते। बात यह है कि मानवी कल्पना इतनी प्रशस्त नहीं कि एक-दो बार में कई व्यापार उसके द्वारा हृदय पर स्पष्ट रीति से खचित हो सकें। यदि कोई ऐसा शब्द प्रयोग में लाया गया जो कई संयुक्त व्यापारों का बोधक है तो सम्भव है, कल्पना शक्ति किसी एक व्यापार को भी न ग्रहण कर सके अथवा तदन्तर्गत कोई ऐसा व्यापार प्रगट करे, जो मानवी प्रकृति का उद्दीपक न हो। तात्पर्य यह कि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग तथा ऐसे शब्दों का समावेश जो कई संयुक्त व्यापारों की सूचना देते हैं, कविता में वांछित नहीं। किसी ने 'प्रेम फौजदारी' नाम की शृंगार-रस-विशिष्ट एक छोटी-सी कविता अदालती कार्रवाइयों पर घटा कर लिखी है और उसे 'एक तरफा डिगरी' आदि कानूनी शब्दों से भर दिया है। यह उचित नहीं। कविता का उद्देश्य इसके विपरीत व्यवहार से सिद्ध होता है। जब कोई कवि किसी दार्शनिक सिद्धान्त को अधिक प्रभावोत्पादक बना कर उसे लोगों के चित्त पर अंकित करना चाहता है, तब वह जटिल और पारिभाषिक शब्दों को निकाल कर उसे अधिक प्रत्यक्ष और मर्म स्पर्शी रुप देता है। भर्तृहरि और गोस्वामी तुलसीदास आदि इस बात में बहुत निपुण थे। भर्तृहरि का एक 'लोक लीजिए- तृषा शुष्यतास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभि-

क्षुधार्त्तः संछालीन्कवलयति शाकादिवलितान।
प्रदीप्ते रागाग्नौ सुदृढ़तरमाश्लिष्यति वधूं
प्रतीकारो व्याधैः सुखमिति विपर्यस्यति जनः।।

भावार्थ - प्यासे होने पर स्वादिष्ट और सुगन्धित जल-पान, भूखे होने पर शाकादि के साथ चावलों का भोज और हृदय में अनुरागाग्नि के प्रज्वलित होने पर प्रियात्मा का आलिंगन करने वाले मनुष्य विलक्षण मूर्ख हैं, क्योंकि प्यास आदि व्याधियों की शान्ति के लिए जल-पान आदि प्रतीकारों ही को वे सुख समझते हैं। वे नहीं जानते कि उनका यह उपचार बिलकुल ही उलटा है। देखिए,

यहाँ पर कवि ने कैसी विलक्षण उक्ति के द्वारा मनुष्य की सुख:दुख विषयक बुद्धि की भ्रामिकता दिखलाई है। अंग्रेजों में भी पोप कवि इस विषय में बहुत सिद्धहस्त था। नीचे उसका एक साधारण सिद्धान्त लिखा जाता है- "भविष्यत् में क्या होने वाला है, इस बात की अनभिज्ञता इसलिए दी गई है, जिसमें सब लोग, आने वाले अनिष्ट की शंका से, उस अनिष्ट घटना के पूर्ववर्ती दिनों के सुख को भी न खो बैठें।" इसी बात को पोप कवि इस तरह कहता है-

The lamb thyariot dooms to bleed to day
Had he thy reason would he skip and play\
Pleased to the last he crops the flowry food
And licks the hand just raised to shed his blood.
The blindness to the future kindly givenA Essay on man.

भावार्थ - उस भेड़ के बच्चे को, जिसका तू आज रक्त बहाना चाहता है, यदि तेरा ही सा ज्ञान होता तो क्या वह उछलता कूदता फिरता? अन्त तक वह आनन्दपूर्वक चारा खाता है और उस हाथ को चाटता है जो उसका रक्त बहाने के लिए उठाया गया है। भविष्यत् का अज्ञान हमें (ईश्वर ने) बड़ी कृपा करके दिया है। 'अनिष्ट' शब्द बहुत व्यापक और संदिग्ध है, अत: कवि मृत्यु ही को सबसे अधिक अनिष्ट वस्तु समझता है। मृत्यु की आशंका से प्राणिमात्र का विचलित होना स्वाभाविक है। कवि दिखलाता है कि परम अज्ञानी पशु भी मृत्यु सिर पर नाचते रहते भी सुखी रहता है। यहाँ तक कि वह प्रहारकर्ता के हाथ को चाटता जाता है। यह एक अद्‌भुत और मर्मस्पर्शी दृश्य है। पूर्वोक्त सिद्धान्त को यहाँ काव्य का रूप प्राप्त हुआ है। एक और साधारण-सा उदाहरण लीजिए। "तुमने उससे विवाह किया" यह एक बहुत ही साधारण वाक्य है। पर "तुमने उसका हाथ पकड़ा" यह एक विशेष अर्थ-गर्भित और काव्योचित वाक्य है। 'विवाह' शब्द के अन्तर्गत बहुत से विधान हैं, जिन सब पर कोई एक दफे दृष्टि नहीं डाल सकता। अत: उससे कोई बात स्पष्ट रूप से कल्पना में नहीं आती। इस कारण उन विधानों में से सबसे प्रधान और स्वाभाविक बात जो हाथ पकड़ना है उसे चुन कर कवि अपने अर्थ को मनुष्य के हृत्पटल पर रेखांकित करता है।

हिंदी-काव्य में राष्ट्रीय विचारधारा

राष्ट्रीय काव्य-रचना के लिए वातावरण का प्रक्षुब्ध होना तथा समाज का संघर्षरत होना अपेक्षित है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के प्रारंभ से देश में

आजादी की लड़ाई का वातावरण तैयार हो गया था। इसी तरह वीरगाथा काल से ही राष्ट्रीय भावना और प्रभुब्ध वातावरण के भिन्न-भिन्न रूप मिलते हैं, जिनका प्रभाव तत्कालीन कवियों की रचना पर पड़ा था। वीरगाथा काल की राष्ट्रीयता राजाओं के व्यक्तिगत मानापमान, शौर्य-प्रदर्शन तथा अपने राज्य की रक्षा तक ही सीमित था।

उस समय कवियों को राज्याश्रय प्राप्त था, जो अपने आश्रय-दाताओं पर वीर रस प्रधान कविताएँ रचते थे। वीरगाथा काल के 'रासो' काव्य इसके प्रमाण हैं। भक्तिकाल के भक्त-कवियों ने तत्कालीन हिंदू जनता की युद्धजन्य पराजित दैन्य को राम-कृष्ण गाथाओं द्वारा दूर करने की कोशिश अवश्य की थी, किंतु उनके काव्यों को राष्ट्रीय काव्य नहीं कहा जा सकता।

रीतिकाल में मुगल शासन के विरुद्ध छिटपुट राजाओं का व्यक्तिगत मुक्ति-संग्राम तथा उनके दरबारी कवियों द्वारा रचित वीरकाव्य द्रष्टव्य हैं। अकबर के विरुद्ध राणाप्रताप और औरंगजेब के विरुद्ध शिवाजी का युद्ध-प्रयास हिंदू राष्ट्रीयता तक सीमित था।

अतः भूषण, सूदन और लाल की वीर रचनाएँ आश्रयदाता से हटकर साधारण जनता की नहीं बन पाई थीं। सन् 1857 के बाद भारत में सामंतवादी राष्ट्रीयता के बदले जनतांत्रिक राष्ट्रीयता का श्रीगणेश होता है। अंग्रेजों की दमन नीति और अर्थशोषण के विरुद्ध पहला स्वर भारतेंदु की रचना 'भारत दुर्दशा' में फूट पड़ा।

द्विवेदी-युग में राष्ट्र के गौरवशाली अतीत के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रगीतों में मुक्ति-संग्राम के अभियान-गीतों का स्वर विशेष उच्चारित हुआ। क्रांग्रेस का नेतृत्व महात्मा गांधी के हाथों में आया। उन्होंने सत्य, अहिंसा, सविनय अवज्ञा, असहयोग आदोलन का राजनीति में प्रयोग किया, जिसके समांतर सामाजिक, धार्मिक तथा शैक्षिक सुधार-आंदोलन भी जोर पकड़ता गया।

यह संपूर्ण आंदोलन हिंदी कविता में प्रतिबिंबित हुआ। गुप्त, दिनकर, पंत, निराला, नवीन, सोहनलाल द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी, श्याम नारायण पांडे आदि सभी कवियों ने देश के लिए त्याग-बलिदान से ओत-प्रोत मुक्तक गीत और खंडकाव्य रचे। राष्ट्रीयता के प्रतीक के रूप में 'वंदे मातरम्', 'जन गण मन अधिकनायक' जैसे गीतों तथा राष्ट्रीय पताका का गौरव बढ़ा।

इस राष्ट्रीय विचारधारा से जनता की भावना ज, आत्मगौरव बढ़ा, अपनी संस्कृति के प्रति आस्था का प्रत्यावर्तन हुआ। इस तरह जन-जागरण का काम

राष्ट्रीय कविताएँ सफलतापूर्वक करती रहीं। राष्ट्रीय विचारधारा के कारण आधुनिक हिंदी कविता-विधा की प्रतिष्ठा बड़ी। इतना ही नहीं, हिंदी स्वयं राष्ट्रभाषा कहलाई।

साहित्य समाज का दर्पण होने के कारण समाज में व्याप्त विचारधारा साहित्य की काव्य-विधा में भाव-प्रवणता के साथ व्यक्त होती है। हिंदी सदा देशकाल के अनुसार जन- भावना को व्यक्त करती रही है। जीवन में राष्ट्रीय भावनाओं का बड़ा महत्त्व है। हिंदी कविता ने इस दायित्व का पूरी तरह से निर्वाह किया है और देश को जाग्रत किया। कहा जा सकता है कि आधुनिक भारतीय भाषाओं में राष्ट्रीय भावनाएं हिंदी कविता में सर्वाधिक व्यक्त हुई हैं।

श्रुति सुखदाता

कविता की बोली और साधारण बोली में बड़ा अन्तर है। "शुष्को वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे" और "नीरसतरुरिह विलसति पुरतः" वाली बात हमारी पण्डित मण्डली में बहुत दिन से चली आती है। भाव-सौन्दर्य और नाद-सौन्दर्य दोनों के संयोग से कविता की सृष्टि होती है। श्रुति-कटु मानकर कुछ अक्षरों का परित्याग, वृत्त-विधान और अन्त्यानुप्रास का बन्धन, इस नाद-सौन्दर्य के निबाहने के लिए है। बिना इसके कविता करना अथवा केवल इसी को सर्वस्व मानकर कविता करने की कोशिश करना निष्फल है। नाद-सौन्दर्य के साथ भाव-सौन्दर्य भी होना चाहिए। हिन्दी के कुछ पुराने कवि इसी नाद-सौन्दर्य के इतना पीछे पड़ गए थे कि उनकी अधिकांश कविता विकृत और प्रायः भावशून्य हो गई है। यह देखकर आजकल के कुछ समालोचक इतना चिढ़ गए हैं, कि ऐसी कविता को एकदम निकाल बाहर करना चाहते हैं। किसी को अन्त्यानुप्रास का बन्धन खलता है, कोई गणात्मक द्वन्द्वों को देखकर नाक-भौं चढ़ाता है, कोई फारसी के मुखम्मस और रुबाई की ओर झुकता है। हमारी छन्दोरचना तक की कोई-कोई अवहेलना करते हैं- वह छन्दो रचना जिसके माधुर्य को भूमण्डल के किसी देश का छन्द शास्त्र नहीं पा सकता और जो हमारी श्रुति-सुखदता के स्वाभाविक प्रेम के सर्वथा अनुकूल है। जो लोग अन्त्यानुप्रास की बिलकुल आवश्यकता नहीं समझते उनसे मुझे यही पूछना है कि अन्त्यानुप्रास ही पर इतना कोप क्यों? छन्द (Metre) और तुक (Rhyme) दोनों ही नाद-सौन्दर्य के उद्देश्य से रखे गए हैं, फिर क्यों एक को निकाला जाए दूसरे को नहीं? यदि कहा जाए कि सिर्फ छन्द से उस उद्देश्य की सिद्धि हो जाती है तो यह जानने की इच्छा बनी रहती है कि क्या

कविता के लिए नाद-सौन्दर्य की कोई सीमा नियत है। यदि किसी कविता में भाव-सौन्दर्य के साथ नाद-सौन्दर्य भी वर्तमान हो, तो वह अधिक ओजस्विनी और चिरस्थायिनी होगी। नाद-सौन्दर्य कविता के स्थायित्व का वर्धक है, उसके बल से कविता ग्रंथाश्रय-विहीन होने पर भी किसी न किसी अंश में लोगों की जिह्वा पर बनी रहती है। अतएव इस नाद-सौन्दर्य को केवल बन्धन ही न समझना चाहिए। यह कविता की आत्मा नहीं, तो शरीर अवश्य है। नाद-सौन्दर्य संबंधी नियमों को गणित-क्रिया समान काम में लाने से हमारी कविता में कहीं-कहीं बड़ी विलक्षणता आ गई है। श्रुति-कटु वर्णों का निर्देश इसलिए नहीं किया गया कि जितने अक्षर श्रवण-कटु हैं, वे एकदम त्याज्य समझे जाएँ और उनकी जगह पर श्रवण-सुखद वर्ण ढूंढ-ढूंढ कर रखे जाएँ। इस नियम-निर्देश का मतलब सिर्फ इतना ही है कि यदि मधुराक्षर वाले शब्द मिल सकें और बिना तोड़ मरोड़ के प्रसंगानुसार खप सकें तो उनके स्थान पर श्रुति-कर्कश अक्षर वाले शब्द न लाए जाएँ। संस्कृत से सम्बन्ध रखने वाली भाषाओं में इस नाद-सौन्दर्य का निर्वाह अधिकता से हो सकता है। अतः अंग्रेजी आदि अन्य भाषाओं की देखा-देखी जिनमें इसके लिए कम जगह है, अपनी कविता को भी हमें इस विशेषता से वंचित कर देना बुद्धिमानी का काम नहीं। पर, याद रहे, सिर्फ श्रुति-मधुर अक्षरों के पीछे दीवाने रहना और कविता को अन्यान्य गुणों से भूषित न करना सबसे बड़ा दोष है। एक और विशेषता हमारी कविता में है। वह यह है कि कहीं-कहीं व्यक्तियों के नामों के स्थान पर उनके रूप या कार्यबोधक शब्दों का व्यवहार किया जाता है। पद्य के नपे हुए चरणों के लिए शब्दों की संख्या का बढ़ाना ही इसका प्रयोजन जान पड़ता है, पर विचार करने से इसका इससे भी गुरुतर उद्देश्य प्रगट होता है। सच पूछिए तो यह बात कृत्रिमता बचाने के लिए की जाती है। मनुष्यों के नाम यथार्थ में कृत्रिम संकेत हैं, जिनसे कविता की परिपोषकता नहीं होती। अतएव कवि मनुष्यों के नामों के स्थान पर कभी कभी उनके ऐसे रूप, गुण या व्यापार की ओर इशारा करता है जो स्वाभाविक होने के कारण सुनने वाले के ध्यान में अधिक आ सकते हैं और प्रसंग विशेष के अनुकूल होने से वर्णन की यथार्थता को बढ़ाते हैं। गिरिधर, मुरारि, त्रिपुरारि, दीनबन्धु, चक्रपाणि, दशमुख आदि शब्द ऐसे ही हैं। ऐसे शब्दों को चुनते समय प्रसंग या अवसर का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। जैसे, यदि कोई मनुष्य किसी दुर्धर्ष अत्याचारी के हाथ से छुटकारा पाना चाहता हो तो उसके लिए - 'हे गोपिकारमण!' 'हे वृन्दावनबिहारी!' आदि कहकर कृष्ण को पुकारने की अपेक्षा

'हे मुरारि!' 'हे कंसनिकंदन' आदि सम्बोधनों से पुकारना अधिक उपयुक्त है, क्योंकि श्रीकृष्ण के द्वारा मुर और कंस आदि दुष्टों को मारा जाना देख कर उसे उनसे अपनी रक्षा की आशा हुई है न कि उनकी वृन्दावन में गोपियों के साथ विहार करना देख कर। इसी तरह किसी आपत्ति से उद्धार पाने के लिए कृष्ण को 'मुरलीधर' कह कर पुकारने की अपेक्षा 'गिरिधर' कहना अधिक तर्क-संगत है।

अलंकार

कविता में भाषा को खूब जोरदार बनाना पड़ता है- उसकी सब शक्तियों से काम लेना पड़ता है। कल्पना को चटकीली करने और रस-परिपाक के लिए कभी-कभी किसी वस्तु का गुण या आकार बहुत बढ़ाकर दिखाना पड़ता है और कभी घटाकर। कल्पना-तरंग को ऊँचा करने के लिए कभी-कभी वस्तु के रूप और गुण को उसके समान रूप और धर्म वाली और वस्तुओं के सामने लाकर रखना पड़ता है। इस तरह की भिन्न-भिन्न प्रकार की वर्णन-प्रणालियों का नाम अलंकार है। इनका उपयोग काव्य में प्रसंगानुसार विशेष रूप से होता है। इनसे वस्तु वर्णन में बहुत सहायता मिलती है। कहीं-कहीं तो इनके बिना कविता का काम ही नहीं चल सकता, किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि अलंकार ही कविता है। ये अलंकार बोलचाल में भी रोज आते रहते हैं। जैसे, लोग कहते हैं 'जिसने शालग्राम को भून डाला उसे भंटा भूनते क्या लगता है?' इसमें काव्यार्थापत्ति अलंकार है। 'क्या हमसे बैर करके तुम यहाँ टिक सकते हो?' इसमें वक्रोक्ति है। कई वर्ष हुए 'अलंकारप्रकाश' नामक पुस्तक के कर्ता का एक लेख 'सरस्वती' में निकला था। उसका नाम था- 'कवि और काव्य'। उसमें उन्होंने अलंकारों की प्रधानता स्थापित करते हुए और उन्हें काव्य का सर्वस्व मानते हुए लिखा था कि 'आजकल के बहुत से विद्वानों का मत विदेशी भाषा के प्रभाव से काव्य विषय में कुछ परिवर्तित देख पड़ता है। वे महाशय सर्वलोकमान्य साहित्य-ग्रन्थों में विवेचन किए हुए व्यंग्य-अलंकार-युक्त काव्य को उत्कृष्ट न समझ केवल सृष्टि-वैचित्र्य वर्णन में काव्यत्व समझते हैं। यदि ऐसा हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या?' रस और भाव ही कविता के प्राण हैं। पुराने विद्वान् रसात्मक कविता ही को कविता कहते थे। अलंकारों को वे आवश्यकतानुसार वर्णित विषय को विशेषतया हृदयंगम करने के लिए ही लाते थे। यह नहीं समझा जाता था कि अलंकार के बिना कविता हो ही नहीं

सकती। स्वयं काव्य-प्रकाश के कर्ता मम्मटाचार्य ने बिना अलंकार के काव्य का होना माना है और उदाहरण भी दिया है- "तददौषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि." किन्तु पीछे से इन अलंकारों ही में काव्यत्व मान लेने से कविता अभ्यासगम्य और सुगम प्रतीत होने लगी। इसी से लोग उनकी ओर अधिक पड़े। धीरे-धीरे इन अलंकारों के लिए आग्रह होने लगा। यहाँ तक कि चन्द्रालोककार ने कह डाला कि-

अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती।।

अर्थात् - जो अलंकार-रहित शब्द और अर्थ को काव्य मानता है वह अग्नि को उष्णता रहित क्यों नहीं मानता? परन्तु यथार्थ बात कब तक छिपाई जा सकती है। इतने दिनों पीछे समय ने अब पलटा खाया। विचारशील लोगों पर यह बात प्रगट हो गई कि रसात्मक वाक्यों ही का नाम कविता है और रस ही कविता की आत्मा है। इस विषय में पूर्वोक्त ग्रंथकार महोदय को एक बात कहनी थी, पर उन्होंने नहीं कही। वे कह सकते थे कि सृष्टि-वैचित्र्य-वर्णन भी तो स्वभावोक्ति अलंकार है। इसका उत्तर यह है कि स्वभावोक्ति को अलंकार मानना उचित नहीं। वह अलंकारों की श्रेणी में आ ही नहीं सकती। वर्णन करने की प्रणाली का नाम अलंकार है। जिस वस्तु को हम चाहें उस प्रणाली के अन्तर्गत करके उसका वर्णन कर सकते हैं। किसी वस्तु-विशेष से उसका सम्बन्ध नहीं। यह बात अलंकारों की परीक्षा से स्पष्ट हो जाएगी। स्वभावोक्ति में वर्ण्य वस्तु का निर्देश है, पर वस्तु-निर्वाचन अलंकार का काम नहीं। इससे स्वभावोक्ति को अलंकार मानना ठीक नहीं। उसे अलंकारों में गिनने वालों ने बहुत सिर खपाया है, पर उसका निर्दोष लक्षण नहीं कर सके। काव्य-प्रकाश के कारिकाकार ने उसका लक्षण लिखा है-

स्वभावोक्तिवस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारुपवर्णनम्

अर्थात्- जिसमें बालकादिकों की निज की क्रिया या रूप का वर्णन हो वह स्वभावोक्ति है। बालकादिकों की निज की क्रिया या रूप का वर्णन हो वह स्वभावोक्ति है। बालकादिक कहने से किसी वस्तुविशेष का बोध तो होता नहीं। ससे यही समझा जा सकता है कि सृष्टि की वस्तुओं के व्यापार और रूप का वर्णन स्वभावोक्ति है। इस लक्षण में अतिव्याप्ति दोष के कारण अलंकारता नहीं आती। अलंकार सर्वस्व के कर्ता राजानक रूय्यक ने इसका यह लक्षण लिखा है-

सूक्ष्मवस्तु स्वभावयथावद्वर्णनं स्वभावोक्तिः।

अर्थात्- वस्तु के सूक्ष्म स्वभाव का ठीक-ठीक वर्णन करना स्वभावोक्ति है। आचार्य दण्डी ने अवस्था की योजना करके यह लक्षण लिखा है-

नानावस्थं पदार्थनां रुपं साक्षाद्विवृण्वती।
स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालंकृतिर्यथा॥

बात यह है कि स्वभावोक्ति अलंकार के अंतर्गत आ ही नहीं सकती, क्योंकि वह वर्णन की शैली नहीं, किन्तु वर्ण्य वस्तु या विषय है। जिस प्रकार एक कुरूपा स्त्री अलंकार धारण करने से सुन्दर नहीं हो सकती उसी प्रकार अस्वाभाविक भद्दे और क्षुद्र भावों को अलंकार-स्थापना सुन्दर और मनोहर नहीं बना सकती। महाराज भोज ने भी अलंकार को 'अलमर्थमलंकर्तुः' अर्थात् सुन्दर अर्थ को शोभित करने वाला ही कहा है। इस कथन से अलंकार आने के पहले ही कविता की सुन्दरता सिद्ध है। अतः उसे अलंकारों में ढूंढना भूल है। अलंकारों से युक्त बहुत से ऐसे काव्योदाहरण दिए जा सकते हैं जिनको अलंकार के प्रेमीलोग भी भद्दा और नीरस कहने में संकोच न करेंगे। इसी तरह बहुत से ऐसे उदाहरण भी दिए जा सकते हैं जिनमें एक भी अलंकार नहीं, परंतु उनके सौन्दर्य और मनोरंजकत्व को सब स्वीकार करेंगे। जिन वाक्यों से मनुष्य के चित्त में रस संचार न हो - उसकी मानसिक स्थिति में कोई परिवर्तन न हो - वे कदापि काव्य नहीं। अलंकारशास्त्र की कुछ बातें ऐसी हैं, जो केवल शब्द चातुरी मात्र हैं। उसी शब्दकौशल के कारण वे चित्त को चमत्कृत करती हैं। उनसे रस-संचार नहीं होता। वे कान को चाहे चमत्कृत करें, पर मानव-हृदय से उनका विशेष सम्बन्ध नहीं। उनका चमत्कार शिल्पकारों की कारीगरी के समान सिर्फ शिल्प-प्रदर्शनी में रखने योग्य होता है। अलंकार है क्या वस्तु? विद्वानों ने काव्यों के सुन्दर-सुन्दर स्थलों को पहले चुना। फिर उनकी वर्णन शैली से सौन्दर्य का कारण ढूंढा। तब वर्णन-वैचित्र्य के अनुसार भिन्न-भिन्न लक्षण बनाए। जैसे 'विकल्प' अलंकार को पहले पहल राजानक रुय्यक ने ही निकाला है। अब कौन कह सकता है कि काव्यों के जितने सुन्दर-सुन्दर स्थल थे सब ढूंढ डाले गए, अथवा जो सुन्दर समझे गए - जिन्हें लक्ष्य करने लक्षण बने- उनकी सुन्दरता का कारण कही हुई वर्णन प्रणाली ही थी। अलंकारों के लक्षण बनने तक काव्यों का बनना नहीं रुका रहा। आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि ने - "मां निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः" का उच्चारण किसी अलंकार को ध्यान में रखकर नहीं किया। अलंकार लक्षणों के बनने से बहुत पहले कविता होती थी और

अच्छी होती थी। अथवा यों कहना चाहिए की जब से इन अलंकारों को हठात् लाने का उद्योग होने लगा तबसे कविता कुछ बिगड़ चली।

मनोरंजन और स्वभाव-संशोधन

कविता के द्वारा हम संसार के सुख, दु:ख, आनन्द और क्लेश आदि यथार्थ रूप से अनुभव कर सकते हैं। किसी लोभी और कंजूस दुकानदार को देखिए, जिसने लोभ के वशीभूत होकर क्रोध, दया, भक्ति, आत्माभिमान आदि मनोविकारों को दबा दिया है और संसार के सब सुखों से मुँह मोड़ लिया है अथवा किसी महाक्रूर राजकर्मचारी के पास जाइए, जिसका हृदय पत्थर के समान जड़ और कठोर हो गया है, जिसे दूसरे के दु:ख और क्लेश का अनुभव स्वप्न में भी नहीं होता। ऐसा करने से आपके मन में यह प्रश्न अवश्य उठेगा कि क्या इनकी भी कोई दवा है। ऐसे हृदयों को द्रवीभूत करके उन्हें अपने स्वाभाविक धर्म पर लाने की सामर्थ्य काव्य ही में है। कविता ही उस दुकानदार की प्रवृत्ति भौतिक और आध्यात्मिक सृष्टि के सौन्दर्य की ओर ले जाएगी, कविता ही उसका ध्यान औरों की आवश्यकता की ओर आकर्षित करेगी और उनकी पूर्ति करने की इच्छा उत्पन्न करेगी, कविता ही उसे उचित अवसर पर क्रोध, दया, भक्ति, आत्माभिमान आदि सिखावेगी। इसी प्रकार उस राजकर्मचारी के सामने कविता ही उसके कार्यों का प्रतिबिम्ब खींचकर रखेगी और उनकी जघन्यता और भयंकरता का आभास दिखलावेगी तथा दैवी किंवा अन्य मनुष्यों द्वारा पहुँचाई हुई पीड़ा और क्लेश के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंश को दिखलाकर उसे दया दिखाने की शिक्षा देगी। प्राय: लोग कहा करते हैं कि कविता का अन्तिम उद्देश्य मनोरंजन है, पर मेरी समझ में मनोरंजन उसका अन्तिम उद्देश्य नहीं है। कविता पढ़ते समय मनोरंजन अवश्य होता है, पर इसके सिवा कुछ और भी होता है। मनोरंजन करना कविता का प्रधान गुण है। इससे मनुष्य का चित्त एकाग्र हो जाता है, इधर-उधर जाने नहीं पाता। यही कारण है कि नीति और धर्म-सम्बन्धी उपदेश चित्त पर वैसा असर नहीं करते जैसा कि किसी काव्य या उपन्यास से निकली हुई शिक्षा असर करती है। केवल यही कहकर कि 'परोपकार करो' 'सदैव सच बोलो' 'चोरी करना महापाप है' हम यह आशा कदापि नहीं कर सकते कि कोई अपकारी मनुष्य परोपकारी हो जाएगा, झूठा सच्चा हो जाएगा और चोर चोरी करना छोड़ देगा, क्योंकि पहले तो मनुष्य का चित्त ऐसी शिक्षा ग्रहण करने के लिए उद्यत ही नहीं होता, दूसरे मानव-जीवन पर उसका कोई प्रभाव अंकित हुआ न देखकर वह उनकी कुछ परवाह नहीं करता, पर कविता अपनी

मनोरंजक शक्ति के द्वारा पढ़ने या सुनने वाले का चित्त उचटने नहीं देती। उसके हृदय आदि अत्यन्त कोमल स्थानों को स्पर्श करती है और सृष्टि में उक्त कर्मों के स्थान और सम्बन्ध की सूचना देकर मानव जीवन पर उनके प्रभाव और परिणाम को विस्तृत रूप से अंकित करके दिखलाती है। इन्द्रासन खाली कराने का वचन देकर, हूर और गिलमा का लालच दिखाकर, यमराज का स्मरण दिलाकर और दोजख की जलती हुई आग की धमकी देकर हम बहुधा किसी मनुष्य को सदाचारी और कर्त्तव्य-परायण नहीं बना सकते। बात यह है कि इस तरह का लालच या धमकी ऐसी है जिससे मनुष्य परिचित नहीं और जो इतनी दूर की है कि उसकी परवा करना मानव-प्रकृति के विरुद्ध है।

सदाचार में एक अलौकिक सौन्दर्य और माधुर्य होता है। अतः लोगों को सदाचार की ओर आकर्षित करने का प्रकृत उपाय यही है कि उनको उसका सौन्दर्य और माधुर्य दिखाकर लुभाया जाए, जिससे वे बिना आगा पीछा सोचे मोहित होकर उसकी ओर ढल पड़ें। मन को हमारे आचार्यों ने ग्यारहवीं इन्द्रिय माना है। उसका रंजन करना और उसे सुख पहुँचाना ही यदि कविता का धर्म माना जाए तो कविता भी केवल विलास की सामग्री हुई। परन्तु क्या हम कह सकते हैं कि वाल्मीकि का आदि-काव्य, तुलसीदास का रामचरितमानस, या सूरदास का सूरसागर विलास की सामग्री है? यदि इन ग्रन्थों से मनोरंजन होगा, तो चरित्र-संशोधन भी अवश्य ही होगा। खेद के साथ कहना पड़ता है कि हिन्दी भाषा के अनेक कवियों ने शृंगार रस की उन्माद कारिणी उक्तियों से साहित्य को इतना भर दिया है कि कविता भी विलास की एक सामग्री समझी जाने लगी है। पीछे से तो ग्रीष्मोपचार आदि के नुस्खे भी कवि लोग तैयार करने लगे। ऐसी शृंगारिक कविता को कोई विलास की सामग्री कह बैठे तो उसका क्या दोष? सारांश यह कि कविता का काम मनोरंजन ही नहीं कुछ और भी है। चरित्र-चित्रण द्वारा जितनी सुगमता से शिक्षा दी जा सकती है, उतनी सुगमता से किसी और उपाय द्वारा नहीं। आदि-काव्य रामायण में जब हम भगवान् रामचन्द्र के प्रतिज्ञा-पालन, सत्यव्रताचरण और पितृभक्ति आदि की छटा देखते हैं, भारत के सर्वोच्च स्वार्थत्याग और सर्वांगपूर्ण सात्विक चरित्र का अलौकिक तेज देखते हैं, तब हमारा हृदय श्रद्धा, भक्ति और आश्चर्य से स्तम्भित हो जाता है।

इसके विरुद्ध जब हम रावण की दुष्टता और उद्दंडता का चित्र देखते हैं तब समझते हैं कि दुष्टता क्या चीज है और उसका प्रभाव और परिणाम सृष्टि में क्या है। अब देखिए कविता द्वारा कितना उपकार होता है। उसका काम भक्ति, श्रद्धा, दया,

करुणा, क्रोध और प्रेम आदि मनोवेगों को तीव्र और परिमार्जित करना तथा सृष्टि की वस्तुओं और व्यापारों से उनका उचित और उपयुक्त सम्बन्ध स्थिर करना है।

आधुनिक काव्य धारा

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल 1850 से आरम्भ होता है। हिंदी साहित्य के इस युग में भारतीय-राष्ट्रीयता के बीज अंकुरित होने लगे थे। इसी युग में हिन्दी पद्य के साथ-साथ गद्य का भी विकास हुआ। स्वतंत्रता संग्राम लड़ा और जीता गया। छापेखाने का आविष्कार हुआ, आवागमन के साधन आम आदमी के जीवन का हिस्सा बने, जन संचार के विभिन्न साधनों का विकास हुआ, रेडियो, टी वी व समाचार पत्र हर घर का हिस्सा बने और शिक्षा हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार। इन सब परिस्थितियों का प्रभाव हिंदी साहित्य पर अनिवार्यत: पड़ा। आधुनिक काल का हिंदी पद्य साहित्य पिछली सदी में विकास के अनेक पड़ावों से गुजरा। जिसमें अनेक विचार धाराओं का बहुत तेजी से विकास हुआ। जहां काव्य में इसे छायावादी युग, प्रगतिवादी युग, प्रयोगवादी युग और यथार्थवादी युग इन चार नामों से जाना गया, छायावाद से पहले के पद्य को भारतेंदु हरिश्चंद्र युग और महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के दो और युगों में बांटा गया। इसके विशेष कारण भी हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र युग की कविता (1850-1900)

ईस्वी सन 1850 से 1900 तक की कविताओं पर भारतेंदु हरिश्चंद्र का गहरा प्रभाव पड़ा है। वे ही आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह हैं। उन्होंने भाषा को एक चलता हुआ रूप देने की कोशिश की। आपके काव्य-साहित्य में प्राचीन एवं नवीन का मेल लक्षित होता है। भक्तिकालीन, रीतिकालीन परंपराएं आपके काव्य में देखी जा सकती हैं तो आधुनिक नूतन विचार और भाव भी आपकी कविताओं में पाए जाते हैं। आपने भक्ति-प्रधान, शृंगार-प्रधान, देश-प्रेम-प्रधान तथा सामाजिक-समस्या-प्रधान कविताएं की हैं। आपने ब्रजभाषा से खड़ीबोली की ओर हिंदी-कविता को ले जाने का प्रयास किया। आपके युग में अन्य कई महानुभाव ऐसे हैं जिन्होंने विविध प्रकार हिंदी साहित्य को समृद्ध किया।

द्विवेदी युग की कविता (1900-1920)

सन् 1900 के बाद दो दशकों पर पं महावीर प्रसाद द्विवेदी का पूरा प्रभाव पड़ा। इस युग को इसीलिए द्विवेदी-युग कहते हैं। 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक

के रूप में आप उस समय पूरे हिंदी साहित्य पर छाए रहे। आपकी प्रेरणा से ब्रज-भाषा हिंदी कविता से हटती गई और खड़ी बोली ने उसका स्थान ले लिया। भाषा को स्थिर, परिष्कृत एवं व्याकरण-सम्मत बनाने में आपने बहुत परिश्रम किया। कविता की दृष्टि से वह इतिवृत्तात्मक युग था। आदर्शवाद का बोलबाला रहा। भारत का उज्ज्वल अतीत, देश-भक्ति, सामाजिक सुधार, स्वभाषा-प्रेम वगैरह कविता के मुख्य विषय थे। नीतिवादी विचारधारा के कारण शृंगार का वर्णन मर्यादित हो गया। कथा-काव्य का विकास इस युग की विशेषता है। भाषा खुरदरी और सरल रही। मधुरता एवं सरलता के गुण अभी खड़ी-बोली में आ नहीं पाए थे। सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के यशस्वी कवि हैं। जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इसी युग में ब्रज भाषा में सरस रचनाएं प्रस्तुत कीं।

छायावादी युग की कविता (1920)

सन् 1920 के आसपास हिंदी में कल्पनापूर्ण स्वछंद और भावुक कविताओं की एक बाढ़ आई। यह यूरोप के रोमांटिसिज्म से प्रभावित थी। भाव, शैली, छंद, अलंकार सब दृष्टियों से इसमें नयापन था। भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद लोकप्रिय हुई इस कविता को आलोचकों ने छायावादी युग का नाम दिया। छायावादी कवियों की उस समय भारी कटु आलोचना हुई परंतु आज यह निर्विवाद तथ्य है कि आधुनिक हिंदी कविता की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि इसी समय के कवियों द्वारा हुई। जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा इस युग के प्रधान कवि हैं।

प्रगतिवादी युग की कविता (1930)

छायावादी काव्य बुद्धिजीवियों के मध्य ही रहा। जन-जन की वाणी यह नहीं बन सका। सामाजिक एवं राजनैतिक आंदोलनों का सीधा प्रभाव इस युग की कविता पर सामान्यत: नहीं पड़ा। संसार में समाजवादी विचारधारा तेजी से फैल रही थी। सर्वहारा वर्ग के शोषण के विरुद्ध जनमत तैयार होने लगा। इसकी प्रतिच्छाया हिंदी कविता पर भी पड़ी और हिंदी साहित्य के प्रगतिवादी युग का जन्म हुआ। 1930 के बाद की हिंदी कविता ऐसी प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित है।

प्रयोगवादी युग की कविता

दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात संसार भर में घोर निराशा तथा अवसाद की लहर फैल गई। साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा। 'अज्ञेय' के संपादन में 'तार सप्तक' का प्रकाशन हुआ। तब से हिंदी कविता में प्रयोगवादी युग का जन्म हुआ ऐसी मान्यता है। इसी का विकसित रूप 'नयी कविता' कहलाता है। दुर्बोधता, निराशा, कुंठा, वैयक्तिकता, छंदहीनता के आक्षेप इस कविता पर भी किए गए हैं। वास्तव में नयी कविता नयी रुचि का प्रतिबिंब है। अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, कुंवर नारायण, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, जगदीश गुप्त इस धारा के मुख्य कवि हैं।

इस प्रकार आधुनिक हिंदी खड़ी बोली कविता ने भी अल्प समय में उपलब्धि के उच्च शिखर सर किए हैं। क्या प्रबंध काव्य, क्या मुक्तक काव्य, दोनों में हिंदी कविता ने सुंदर रचनाएं प्राप्त की हैं। गीति-काव्य के क्षेत्र में भी कई सुंदर रचनाएं हिंदी को मिली हैं। आकार और प्रकार का वैविध्य बरबस हमारा ध्यान आकर्षित करता है। संगीत-रूपक, गीत-नाट्य वगैरह क्षेत्रों में भी प्रशंसनीय कार्य हुआ है। कविता के बाह्य एवं अंतरंग रूपों में युगानुरूप जो नये-नये प्रयोग नित्य-प्रति होते रहते हैं, वे हिंदी कविता की जीवनी-शक्ति एवं स्फूर्ति के परिचायक हैं।

2

भारतेंदु हरिश्चंद्र युग की कविता

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल के प्रथम चरण को 'भारतेन्दु युग' की संज्ञा प्रदान की गई है और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। भारतेन्दु का व्यकितत्व प्रभावशाली था, वे सम्पादक और संगठनकर्ता थे, वे साहित्यकारों के नेता और समाज को दिशा देने वाले सुधारवादी विचारक थे, उनके आसपास तरुण और उत्साही साहित्यकारों की पूरी जमात तैयार हुई, अत: इस युग को भारतेन्दु-युग की संज्ञा देना उचित है। डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है कि 'प्राचीन से नवीन के संक्रमण काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारतवासियों की नवोदित आकांक्षाओं और राष्ट्रीयता के प्रतीक थे, वे भारतीय नवोत्थान के अग्रदूत थे।

जिस समय खड़ी बोली गद्य अपने प्रारिम्भक रूप में थी, उस समय हिन्दी के सौभाग्य से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। उन्होंने राजा शिवप्रसाद तथा राजा लक्ष्मण सिंह की आपस में विरोधी शैलियों में समन्वय स्थापित किया और मध्यम मार्ग अपनाया।

इस काल में हिन्दी के प्रचार में जिन पत्र-पत्रिकाओं ने विशेष योग दिया, उनमें उदन्त मार्तण्ड, कवि वचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन अग्रणी हैं। इस समय हिन्दी गद्य की सर्वांगीण प्रगति हुई और उसमें उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, आलोचना, जीवनी आदि विधाओं में अनूदित तथा मौलिक रचनाएं लिखी गयीं।

भारतेंदु युग के काव्य की प्रवृत्तियाँ (विशेषताएँ)

भारतेंदु युग ने हिंदी कविता को रीतिकाल के श्रृंगारपूर्ण और राज-आश्रय के वातावरण से निकाल कर राष्ट्रप्रेम, समाज-सुधार आदि की स्वस्थ भावनाओं से ओत-प्रेत कर उसे सामान्य जन से जोड़ दिया। इस युग की काव्य प्रवृत्तियाँ निम्नानुसार हैं:-

1. देशप्रेम की व्यंजना -अंग्रेजों के दमन चक्र के आतंक में इस युग के कवि पहले तो विदेशी शासन का गुणगान करते नजर आते हैं-

परम दुखमय तिमिर जबै भारत में छायो,
तबहिं कृपा करि ईश ब्रिटिश सूरज प्रकटायो।

किंतु शीघ्र ही यह प्रवृत्ति जाती रही। मननशील कवि समाज राष्ट्र की वास्तविक पुकार को शीघ्र ही समझ गया और उसने स्वदेश प्रेम के गीत गाने प्रारम्भ कर दिए-

बहुत दिन बीते राम, प्रभु खोयो अपनो देस।
खोवत है अब बैठ के, भाषा भोजन भेष ।

(बालमुकुन्द गुप्त)

विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, ईश्वर से स्वतंत्रता की प्रार्थना आदि रूपों में भी यह भावना व्यक्त हुई। इस युग की राष्ट्रीयता सांस्कृतिक राष्ट्रीयता है, जिसमें हिंदू राष्ट्रीयता का स्वर प्रधान है।

देश-प्रेम की भावना के कारण इन कवियों ने एक ओर तो अपने देश की अवनति का वर्णन करके आंसू बहाए तो दूसरी ओर अंग्रेज सरकार की आलोचना करके देशवासियों के मन में स्वराज्य की भावना जगाई। अंग्रेजों की कूटनीति का पर्दाफाश करते हुए भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा-

सत्रु सत्रु लड़वाइ दूर रहि लखिय तमाशा।
प्रबल देखिए जाहि ताहि मिलि दीजै आसा।

इसी प्रकार जब काबुल पर अंग्रेजों की विजय होने पर भारत में दिवाली मनाई गई तो भारतेंदु ने उसका विरोध करते हुए लिखा -

आर्य्य गनन कों मिल्यौ, जो अति प्रफुलित गात।
सबै कहत जै आजु क्यों, यह नहिं जान्यौ जात।
सुजस मिलै अंग्रेज को, होय रूस की रोक।
बढ़ै ब्रिटिश वाणिज्य पै, हमको केवल सोक।

2. सामाजिक चेतना और जन-काव्य–समाज-सुधार इस युग की कविता का प्रमुख स्वर रहा। इन्होंने किसी राजा या आश्रयदाता को संतुष्ट करने के लिए काव्य-रचना नहीं की, बल्कि अपने हृदय की प्रेरणा से जनता तक अपनी भावना पहुंचाने के लिए काव्य रचना की।ये कवि पराधीन भारत को जगाना चाहते थे, इसलिए समाज-सुधार के विभिन्न मुद्दों जैसे स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, विदेश-यात्रा का प्रचार, समाज का आर्थिक उत्थान और समाज में एक-दूसरे की सहायता आदि को मुखरित किया, यथा –

निज धर्म भली विधि जानैं, निज गौरव को पहिचानैं।
स्त्री-गण को विद्या देवें, करि पतिव्रता यज्ञ लेवैं ।
(प्रताप नारायण मिश्र)
हे धनियो क्या दीन जनों की नहिं सुनते हो हाहाकार।
जिसका मरे पड़ोसी भूखा, उसके भोजन को धिक्कार।

3. भक्ति-भावना–इस युग के कवियों में भी भक्ति-भावना दिखाई पड़ती है,लेकिन इनकी भक्ति-भावना का लक्ष्य अवश्य बदल गया। अब वे मुक्ति के लिए नहीं, अपितु देश-कल्याण के लिए भक्ति करते दिखाई देते हैं –

कहाँ करुणानिधि केशव सोए।
जगत नाहिं अनेक जतन करि भारतवासी रोए।
(भारतेंदु हरिश्चंद्र)

4.हिंदू-संस्कृति से प्यार– पिछले युगों की प्रतिक्रिया स्वरूप इस युग के कवि-मानस में अपनी संस्कृति के अनुराग का भाव जाग उठा। यथा –

सदा रखें दृढ़ हिय मँह निज साँचा हिन्दूपन।
घोर विपत हूँ परे दिगै नहिं आन और मन।
(बालमुकुन्द गुप्त)

5. प्राचीनता और नवीनता का समन्वय– इन कवियों ने एक ओर तो हिंदी-काव्य की पुरानी परम्परा के सुंदर रूप को अपनाया, तो दूसरी ओर नयी परम्परा की स्थापना की। इन कवियों के लिए प्राचीनता वंदनीय थी तो नवीनता अभिनंदनीय। अत: ये प्राचीनता और नवीनता का समन्वय अपनी रचनाओं में करते रहे। भारतेंदु अपनी 'प्रबोधिनी' शीर्षक कविता में 'प्रभाती' के रूप में प्राचीन परिपाटी के अनुसार कृष्ण को जगाते हैं और नवीनता का अभिनंदन करते हुए उसमें राष्ट्रीयता का समन्वय करके कहते हैं:–

डूबत भारत नाथ बेगि जागो अब जागो।

6. निज भाषा प्रेम–इस काल के कवियों ने अंग्रेजों के प्रति विद्रोह के रूप में हिंदी-प्रचार को विशेष महत्त्व दिया और कहा –

क) निज-भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

(भारतेंदु)

ख) जपो निरंतर एक जबान, हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान।

(प्रताप नारायण मिश्र)

यद्यपि इस काल का अधिकतर साहित्य ब्रजभाषा में ही है, किंतु इन कवियों ने ब्रजभाषा को भी सरल और सुव्यवस्थित बनाने का प्रयास किया। खड़ी बोली में भी कुछ रचनाएँ की गई, किंतु वे कथात्मकता और रुक्षता से युक्त हैं।

7. शृंगार और सौंदर्य वर्णन–इस युग के कवियों ने सौंदर्य और प्रेम का वर्णन भी किया है, किंतु उसमें कहीं भी कामुकता और वासना का रंग दिखाई नहीं पड़ता। इनके प्रेम-वर्णन में सर्वत्र स्वच्छता एवं गंभीरता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के काव्य से एक उदाहरण दृष्टव्य है:–

हम कौन उपाय करै इनको हरिचन्द महा हठ ठानती हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँकियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं।

8. हास्य-व्यंग्य– भारतेंदु हरिश्चंद्र एवं उनके सहयोगी कवियों में हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति भी मिलती है। उन्होंने अपने समय की विभिन्न बुराइयों पर व्यंग्य-बाण छोड़े हैं। भारतेंदु की कविता से दो उदाहरण प्रस्तुत हैं:–

क) भीतर भीतर सब रस चूसै
हंसि-हंसि कै तन-मन-धन मूसै
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेज।

ख) इनकी उनकी खिदमत करो,
रुपया देते-देते मरो।
तब आवैं मोहिं करन खराब,
क्यों सखि सज्जन नहीं खिताब।

9. प्रकृति-चित्रण–इस युग के कवियों ने पूर्ववर्ती युगों की अपेक्षा प्रकृति के स्वतंत्र रुपों का विशेष चित्रण किया है। भारतेंदु के 'गंगा-वर्णन' और 'यमुना-वर्णन' इसके निदर्शन हैं। ठाकुर जगमोहन सिंह के स्वतंत्र प्रकृति के

वर्णन भी उत्कृष्ट बन पड़े हैं। प्रकृति के उद्दीपन रूपों का वर्णन भी इस काल की प्रवृत्ति के रूप जीवित रहा।

10. रस–इस काल में शृंगार, वीर और करुण रसों की अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति प्रबल रही, किंतु इस काल का शृंगार रीतिकाल के शृंगार जैसा नग्न शृंगार न होकर परिष्कृत रुचि का शृंगार है।देश की दयनीय दशा के चित्रण में करुण रस प्रधान रहा है।

11. भाषा और काव्य-रूप–इन कवियों ने कविता में प्रायः सरल ब्रजभाषा तथा मुक्तक शैली का ही प्रयोग अधिक किया। ये कवि पद्य तक ही सीमित नहीं रहे बल्कि गद्यकार भी बने। इन्होंने अपनी कलम निबंध, उपन्यास और नाटक के क्षेत्र में भी चलाई। इस काल के कवि मंडल में कवि न केवल कवि था बल्कि वह संपादक और पत्रकार भी था।

इस प्रकार भारतेंदु-युग साहित्य के नव जागरण का युग था, जिसमें शताब्दियों से सोये हुए भारत ने अपनी आँखें खोलकर अंगड़ाई ली और कविता को राजमहलों से निकालकर जनता से उसका नाता जोड़ा। उसे कृत्रिमता से मुक्त कर स्वाभाविक बनाया, शृंगार को परिमार्जित रूप प्रदान किया और कविता के पथ को प्रशस्त किया। भारतेंदु और उनके सहयोगी लेखकों के साहित्य में जिन नये विषयों का समावेश हुआ, उसने आधुनिक काल की प्रवृत्तियों को जन्म दिया। इस प्रकार भारतेंदु युग आधुनिक युग का प्रवेश द्वार सिद्ध होता है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (9 सितंबर 1850–6 जनवरी 1885) आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह कहे जाते हैं। वे हिन्दी में आधुनिकता के पहले रचनाकार थे। इनका मूल नाम 'हरिश्चन्द्र' था, 'भारतेन्दु' उनकी उपाधि थी। उनका कार्यकाल युग की सन्धि पर खड़ा है। उन्होंने रीतिकाल की विकृत सामन्ती संस्कृति की पोषक वृत्तियों को छोड़कर स्वस्थ परम्परा की भूमि अपनाई और नवीनता के बीज बोए। हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है। भारतीय नवजागरण के अग्रदूत के रूप में प्रसिद्ध भारतेन्दु जी ने देश की गरीबी, पराधीनता, शासकों के अमानवीय शोषण का चित्रण को ही अपने साहित्य का लक्ष्य बनाया। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में उन्होंने अपनी प्रतिभा का उपयोग किया।

भारतेन्दु बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। हिंदी पत्रकारिता, नाटक और काव्य के क्षेत्र में उनका बहुमूल्य योगदान रहा। हिंदी में नाटकों का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चंद्र से माना जाता है। भारतेन्दु के नाटक लिखने की शुरुआत बंगला के विद्यासुन्दर (1867) नाटक के अनुवाद से होती है। यद्यपि नाटक उनके पहले भी लिखे जाते रहे किन्तु नियमित रूप से खड़ीबोली में अनेक नाटक लिखकर भारतेन्दु ने ही हिंदी नाटक की नींव को सुदृढ़ बनाया। उन्होंने 'हरिश्चंद्र चन्द्रिका', 'कविवचनसुधा' और 'बाला बोधिनी' पत्रिकाओं का संपादन भी किया। वे एक उत्कृष्ट कवि, सशक्त व्यंग्यकार, सफल नाटककार, जागरूक पत्रकार तथा ओजस्वी गद्यकार थे। इसके अलावा वे लेखक, कवि, संपादक, निबंधकार, एवं कुशल वक्ता भी थे। भारतेन्दु जी ने मात्र चौंतीस वर्ष की अल्पायु में ही विशाल साहित्य की रचना की। उन्होंने मात्र और गुणवत्ता की दृष्टि से इतना लिखा और इतनी दिशाओं में काम किया कि उनका समूचा रचनाकर्म पथदर्शक बन गया।

जीवन परिचय

भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म 9 सितंबर, 1850 को काशी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ। उनके पिता गोपालचंद्र एक अच्छे कवि थे और 'गिरधरदास' उपनाम से कविता लिखा करते थे। 1857 में प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय उनकी आयु 7 वर्ष की होगी। ये दिन उनकी आँख खुलने के थे। भारतेन्दु का कृतित्त्व साक्ष्य है कि उनकी आँखें एक बार खुलीं तो बन्द नहीं हुईं। उनके पूर्वज अंग्रेज भक्त थे, उनकी ही कृपा से धनवान हुये थे। हरिश्चंद्र पाँच वर्ष के थे तो माता की मृत्यु और दस वर्ष के थे तो पिता की मृत्यु हो गयी। इस प्रकार बचपन में ही माता-पिता के सुख से वंचित हो गये। विमाता ने खूब सताया। बचपन का सुख नहीं मिला। शिक्षा की व्यवस्था प्रथापालन के लिए होती रही। संवेदनशील व्यक्ति के नाते उनमें स्वतन्त्र रूप से देखने-सोचने-समझने की आदत का विकास होने लगा। पढ़ाई की विषय-वस्तु और पद्धति से उनका मन उखड़ता रहा। क्वींस कॉलेज, बनारस में प्रवेश लिया, तीन-चार वर्षों तक कॉलेज आते-जाते रहे पर यहाँ से मन बार-बार भागता रहा। स्मरण शक्ति तीव्र थी, ग्रहण क्षमता अद्‌भुत। इसलिए परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते रहे। बनारस में उन दिनों अंग्रेजी पढ़े-लिखे और प्रसिद्ध लेखक - राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' थे, भारतेन्दु शिष्य भाव से उनके यहाँ जाते। उन्हीं से

अंग्रेजी सीखी। भारतेन्दु ने स्वाध्याय से संस्कृत, मराठी, बंगला, गुजराती, पंजाबी, उर्दू भाषाएँ सीख लीं।

उनको काव्य-प्रतिभा अपने पिता से विरासत के रूप में मिली थी। उन्होंने पांच वर्ष की अवस्था में ही निम्नलिखित दोहा बनाकर अपने पिता को सुनाया और सुकवि होने का आशीर्वाद प्राप्त किया-

लै ब्योढ़ा ठाढ़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान।
बाणासुर की सेन को हनन लगे भगवान॥

धन के अत्यधिक व्यय से भारतेंदु जी घ्णी बन गए और दुश्चिंताओं के कारण उनका शरीर शिथिल होता गया। परिणाम स्वरूप 1885 में अल्पायु में ही मृत्यु ने उन्हें ग्रस लिया।

साहित्यिक परिचय

भारतेन्दु के वृहत साहित्यिक योगदान के कारण ही 1857 से 1900 तक के काल को भारतेन्दु युग के नाम से जाना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, भारतेन्दु अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो पद्माकर, द्विजदेव की परंपरा में दिखाई पड़ते थे, तो दूसरी ओर बंग देश के माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में। प्राचीन और नवीन का सुंदर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है।

पंद्रह वर्ष की अवस्था से ही भारतेंदु ने साहित्य सेवा प्रारंभ कर दी थी। अठारह वर्ष की अवस्था में उन्होंने 'कविवचनसुधा' नामक पत्रिका निकाली, जिसमें उस समय के बड़े-बड़े विद्वानों की रचनाएं छपती थीं। वे बीस वर्ष की अवस्था में ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट बनाए गए और आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने 1868 में 'कविवचनसुधा', 1873 में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और 1874 में स्त्री शिक्षा के लिए 'बाला बोधिनी' नामक पत्रिकाएँ निकालीं। साथ ही उनके समांतर साहित्यिक संस्थाएँ भी खड़ी कीं। वैष्णव भक्ति के प्रचार के लिए उन्होंने 'तदीय समाज' की स्थापना की थी। राजभक्ति प्रकट करते हुए भी, अपनी देशभक्ति की भावना के कारण उन्हें अंग्रेजी हुकूमत का कोपभाजन बनना पड़ा। उनकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर काशी के विद्वानों ने 1880 में उन्हें 'भारतेंदु' (भारत का चंद्रमा) की उपाधि प्रदान की। हिन्दी साहित्य को भारतेन्दु की देन भाषा तथा साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में है। भाषा के क्षेत्र में उन्होंने खड़ी बोली के उस रूप को प्रतिष्ठित किया जो उर्दू से भिन्न

है और हिन्दी क्षेत्र की बोलियों का रस लेकर संवर्धित हुआ है। इसी भाषा में उन्होंने अपने सम्पूर्ण गद्य साहित्य की रचना की। साहित्य सेवा के साथ-साथ भारतेंदु जी की समाज-सेवा भी चलती रही। उन्होंने कई संस्थाओं की स्थापना में अपना योगदान दिया। दीन-दुखियों, साहित्यिकों तथा मित्रों की सहायता करना वे अपना कर्तव्य समझते थे।

प्रमुख कृतियाँ

मौलिक नाटक

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1873ई., प्रहसन)

सत्य हरिश्चन्द्र (1875,नाटक)

श्री चंद्रावली (1876, नाटिका)

विषस्य विषमौषधम् (1876, भाण)

भारत दुर्दशा (1880, ब्रजरत्नदास के अनुसार 1876, नाट्य रासक),

नीलदेवी (1881, ऐतिहासिक गीति रूपक)।

अंधेर नगरी (1881, प्रहसन)

प्रेमजोगिनी (1875, प्रथम अंक में चार गर्भांक, नाटिका)

सती प्रताप (1883,अपूर्ण, केवल चार दृश्य, गीतिरूपक, बाबू राधाकृष्णदास ने पूर्ण किया)

अनूदित नाट्य रचनाएँ

विद्यासुन्दर (1868, नाटक, संस्कृत 'चौरपंचाशिका' के यतीन्द्रमोहन ठाकुर कृत बँगला संस्करण का हिंदी अनुवाद)

पाखण्ड विडम्बन (कृष्ण मिश्र कृत 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक के तृतीय अंक का अनुवाद)

धनंजय विजय (1873, व्यायोग, कांचन कवि कृत संस्कृत नाटक का अनुवाद)

कर्पूर मंजरी (1875, सट्टक, राजशेखर कवि कृत प्राकृत नाटक का अनुवाद)

भारत जननी (1877, नाट्यगीत, बंगला की 'भारतमाता' के हिंदी अनुवाद पर आधारित)

मुद्राराक्षस (1878, विशाखदत्त के संस्कृत नाटक का अनुवाद)

दुर्लभ बंधु (1880, शेक्सपियर के 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का अनुवाद)

निबंध संग्रह
भारतेन्दु ग्रन्थावली (तृतीय खंड) में संकलित।
'नाटक' शीर्षक प्रसिद्ध निबंध(1883)।

प्रमुख निबन्ध

नाटक
कालचक्र (जर्नल)
लेवी प्राण लेवी
भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?
कश्मीर कुसुम
जातीय संगीत
संगीत सार
हिंदी भाषा
स्वर्ग में विचार सभा

काव्यकृतियां

भक्तसर्वस्व (1870)
प्रेममालिका (1871),
प्रेम माधुरी (1875),
प्रेम-तरंग (1877),
उत्तरार्द्ध भक्तमाल (1876-77),
प्रेम-प्रलाप (1877),
होली (1879),
मधु मुकुल (1881),
राग-संग्रह (1880),
वर्षा-विनोद (1880),
विनय प्रेम पचासा (1881),
फूलों का गुच्छा- खड़ीबोली काव्य (1882)
प्रेम फुलवारी (1883)
कृष्णचरित्र (1883)
दानलीला

तन्मय लीला
नये जमाने की मुकरी
सुमनांजलि
बन्दर सभा (हास्य व्यंग)
बकरी विलाप (हास्य व्यंग)

कहानी

अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न
यात्रा वृत्तान्त
सरयूपार की यात्रा
लखनऊ
आत्मकथा
एक कहानी- कुछ आपबीती, कुछ जगबीती
उपन्यास
पूर्णप्रकाश
चन्द्रप्रभा
वर्ण्य विषय

भारतेंदु जी की यह विशेषता रही कि जहां उन्होंने ईश्वर भक्ति आदि प्राचीन विषयों पर कविता लिखी वहां उन्होंने समाज सुधार, राष्ट्र प्रेम आदि नवीन विषयों को भी अपनाया। भारतेंदु की रचनाओं में अंग्रेजी शासन का विरोध, स्वतंत्रता के लिए उद्दाम आकांक्षा और जातीय भावबोध की झलक मिलती है। सामन्ती जकड़न में फंसे समाज में आधुनिक चेतना के प्रसार के लिए लोगों को संगठित करने का प्रयास करना उस जमाने में एक नई ही बात थी। उनके साहित्य और नवीन विचारों ने उस समय के तमाम साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों को झकझोरा और उनके इर्द-गिर्द राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत लेखकों का एक ऐसा समूह बन गया जिसे भारतेन्दु मंडल के नाम से जाना जाता है।

विषय के अनुसार उनकी कविता शृंगार-प्रधान, भक्ति-प्रधान, सामाजिक समस्या प्रधान तथा राष्ट्र प्रेम प्रधान है।

शृंगार रस प्रधान– भारतेंदु जी ने शृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का सुंदर चित्रण किया है।

देख्यो एक बारहूं न नैन भरि तोहि याते
जौन जौन लोक जैहें तही पछतायगी।
बिना प्रान प्यारे भए दरसे तिहारे हाय,
देखि लीजो आंखें ये खुली ही रह जायगी।

भक्ति प्रधान– भारतेंदु जी कृष्ण के भक्त थे और पुष्टि मार्ग के मानने वाले थे। उनकी कविता में सच्ची भक्ति भावना के दर्शन होते हैं। वे कामना करते हैं –

बोल्यों करै नूपुर स्त्रीननि के निकट सदा
पद तल मांहि मन मेरी बिहरयौ करै।
बाज्यौ करै बंसी धुनि पूरि रोम-रोम,
मुख मन मुस्कानि मंद मनही हास्यौ करै।

सामाजिक समस्या प्रधान– भारतेंदु जी ने अपने काव्य में अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों पर तीखे व्यंग्य किए। महाजनों और रिश्वत लेने वालों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा–

चूरन अमले जो सब खाते,
दूनी रिश्वत तुरत पचाते।
चूरन सभी महाजन खाते,
जिससे जमा हजम कर जाते।

राष्ट्र-प्रेम प्रधान– भारतेंदु जी के काव्य में राष्ट्र-प्रेम भी भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। भारत के प्राचीन गौरव की झांकी वे इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं –

भारत के भुज बल जग रच्छित,
भारत विद्या लहि जग सिच्छित।
भारत तेज जगत विस्तारा,
भारत भय कंपिथ संसारा।

प्राकृतिक चित्रण– प्रकृति चित्रण में भारतेंदु जी को अधिक सफलता नहीं मिली, क्योंकि वे मानव-प्रकृति के शिल्पी थे, बाह्य प्रकृति में उनका मर्मपूर्ण रूपेण नहीं रम पाया। अत: उनके अधिकांश प्रकृति चित्रण में मानव हृदय को आकर्षित करने की शक्ति का अभाव है। चंद्रावली नाटिका के यमुना-वर्णन में अवश्य सजीवता है तथा उसकी उपमाएं और उत्प्रेक्षाएं नवीनता लिए हुए हैं–

कै पिय पद उपमान जान यह निज उर धारत,
कै मुख कर बहु भृंगन मिस अस्तुति उच्चारत।
कै ब्रज तियगन बदन कमल की झलकत झांई,
कै ब्रज हरिपद परस हेतु कमला बहु आई॥

प्रकृति वर्णन का यह उदाहारण देखिये, जिसमे युमना की शोभा कितनी दर्शनीय है–

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहूँ सुहाये।

भाषा

भारतेन्दु के समय में राजकाज और संभ्रांत वर्ग की भाषा फारसी थी। वहीं, अंग्रेजी का वर्चस्व भी बढ़ता जा रहा था। साहित्य में ब्रजभाषा का बोलबाला था। फारसी के प्रभाव वाली उर्दू भी चलन में आ गई थी। ऐसे समय में भारतेन्दु ने लोकभाषाओं और फारसी से मुक्त उर्दू के आधार पर खड़ी बोली का विकास किया। आज जो हिंदी हम लिखते–बोलते हैं, वह भारतेंदु की ही देन है। यही कारण है कि उन्हें आधुनिक हिंदी का जनक माना जाता है। केवल भाषा ही नहीं, साहित्य में उन्होंने नवीन आधुनिक चेतना का समावेश किया और साहित्य को 'जन' से जोड़ा।

भारतेन्दु की रचनाधर्मिता में दोहरापन दिखता है। कविता जहां वे ब्रज भाषा में लिखते रहे, वहीं उन्होंने बाकी विधाओं में सफल हाथ खड़ी बोली में आजमाया। सही मायने में कहें तो भारतेंदु आधुनिक खड़ी बोली गद्य के उन्नायक हैं।

भारतेन्दु जी के काव्य की भाषा प्रधानत: ब्रज भाषा है। उन्होंने ब्रज भाषा के अप्रचलित शब्दों को छोड़ कर उसके परिकृष्ट रूप को अपनाया। उनकी भाषा में जहां–तहां उर्दू और अंग्रेजी के प्रचलित शब्द भी जाते हैं।

उनके गद्य की भाषा सरल और व्यवहारिक है। मुहावरों का प्रयोग कुशलतापूर्वक हुआ है।

शैली

भारतेंदु जी के काव्य में निम्नलिखित शैलियों के दर्शन होते हैं –

1. रीति कालीन रसपूर्ण अलंकार शैली – शृंगारिक कविताओं में,
2. भावात्मक शैली – भक्ति के पदों में,

3. व्यंग्यात्मक शैली – समाज-सुधार की रचनाओं में,
4. उद्‌बोधन शैली – देश-प्रेम की कविताओं में।

रस

भारतेंदु जी ने लगभग सभी रसों में कविता की है। शृंगार और शान्त रसों की प्रधानता है। शृंगार के दोनों पक्षों का भारतेंदु जी ने सुंदर वर्णन किया है। उनके काव्य में हास्य रस की भी उत्कृष्ट योजना मिलती है।

छन्द

भारतेंदु जी ने अपने समय में प्रचलित प्रायः सभी छंदों को अपनाया है। उन्होंने केवल हिंदी के ही नहीं उर्दू, संस्कृत, बंगला भाषा के छंदों को भी स्थान दिया है। उनके काव्य में संस्कृत के वसंत तिलका, शार्दूल विक्रीड़ित, शालिनी आदि हिंदी के चौपाई, छप्पय, रोला, सोरठा, कुंडलियाँ, कवित्त, सवैया, घनाक्षरी आदि, बंगला के पयार तथा उर्दू के रेखता, गजल छंदों का प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त भारतेंदु जी कजली, ठुमरी, लावनी, मल्हार, चैती आदि लोक छंदों को भी व्यवहार में लाए हैं।

अलंकार

अलंकारों का प्रयोग भारतेंदु जी के काव्य में सहज रूप से हुआ है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और संदेह अलंकारों के प्रति भारतेंदु जी की अधिक रुचि है। शब्दालंकारों को भी स्थान मिला है। निम्न पंक्तियों में उत्प्रेक्षा और अनुप्रास अलंकार की योजना स्पष्ट दिखाई देती है–

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहु सुहाए।।

महत्वपूर्ण कार्य

नवीन साहित्यिक चेतना और स्वभाषा प्रेम का सूत्रपात

आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतेंदु जी का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। भारतेंदु बहूमुखी प्रतिभा के स्वामी थे। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध आदि सभी क्षेत्रों में उनकी देन अपूर्व है। भारतेंदु जी हिंदी में नव जागरण का

संदेश लेकर अवतरित हुए। उन्होंने हिंदी के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण कार्य किया। भाव, भाषा और शैली में नवीनता तथा मौलिकता का समावेश करके उन्हें आधुनिक काल के अनुरूप बनाया। आधुनिक हिंदी के वे जन्मदाता माने जाते हैं। हिंदी के नाटकों का सूत्रपात भी उन्हीं के द्वारा हुआ।

भारतेंदु जी अपने समय के साहित्यिक नेता थे। उनसे कितने ही प्रतिभाशाली लेखकों को जन्म मिला। मातृ-भाषा की सेवा में उन्होंने अपना जीवन ही नहीं संपूर्ण धन भी अर्पित कर दिया। हिंदी भाषा की उन्नति उनका मूलमंत्र था -

निज भाषा उन्नति लहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को शूल।
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहू, भाषा माहि प्रचार।

1882 में शिक्षा आयोग (हन्टर कमीशन) के समक्ष अपनी गवाही में हिन्दी को न्यायालयों की भाषा बनाने की महत्ता पर उन्होने कहा-

यदि हिन्दी अदालती भाषा हो जाए, तो सम्मन पढ़वाने, के लिए दो-चार आने कौन देगा, और साधारण-सी अर्जी लिखवाने के लिए कोई रुपया-आठ आने क्यों देगा। तब पढ़ने वालों को यह अवसर कहाँ मिलेगा कि गवाही के सम्मन को गिरफ्तारी का वारंट बता दें। सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग किया जाता है। यही (भारत) ऐसा देश है जहाँ अदालती भाषा न तो शासकों की मातृभाषा है और न प्रजा की। यदि आप दो सार्वजनिक नोटिस, एक उर्दू में, तथा एक हिंदी में, लिखकर भेज दें तो आपको आसानी से मालूम हो जाएगा कि प्रत्येक नोटिस को समझने वाले लोगों का अनुपात क्या है। जो सम्मन जिलाधीशों द्वारा जारी किये जाते हैं उनमें हिंदी का प्रयोग होने से रैयत और जमींदार को हार्दिक प्रसन्नता प्राप्त हुई है। साहूकार और व्यापारी अपना हिसाब-किताब हिंदी में रखते हैं। स्त्रियाँ हिंदी लिपि का प्रयोग करती हैं। पटवारी के कागजात हिंदी में लिखे जाते हैं और ग्रामों के अधिकतर स्कूल हिंदी में शिक्षा देते हैं।

इसी सन्दर्भ में 1868 ई में 'उर्दू का स्यापा' नाअम से उन्होंने एक व्यंग्य कविता लिखी-

है है उर्दू हाय हाय। कहाँ सिधारी हाय हाय।
मेरी प्यारी हाय हाय। मुंशी मुल्ला हाय हाय।

बल्ला बिल्ला हाय हाय। रोये पीटें हाय हाय।
टाँग घसीटैं हाय हाय। सब छिन सोचौं हाय हाय।
डाढ़ी नोचौं हाय हाय। दुनिया उल्टी हाय हाय।
रोजी बिल्टी हाय हाय। सब मुखतारी हाय हाय।
किसने मारी हाय हाय। खबर नवीसी हाय हाय।
दाँत पीसी हाय हाय। एडिटर पोसी हाय हाय।
बात फरोशी हाय हाय। वह लस्सानी हाय हाय।
चरब-जुबानी हाय हाय। शोख बयानि हाय हाय।
फिर नहीं आनी हाय हाय।

अपनी इन्हीं कार्यों के कारण भारतेन्दु हिन्दी साहित्याकाश के एक दैदीप्यमान नक्षत्र बन गए और उनका युग भारतेन्दु युग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हरिश्चंद्र चंद्रिका, कविवचनसुधा, हरिश्चन्द्र मैग्जीन, स्त्री बाला बोधिनी जैसे प्रकाशन उनके विचारशील और प्रगतिशील सम्पादकीय दृष्टिकोण का परिचय देते हैं।

साम्राज्य-विरोधी चेतना तथा स्वदेश प्रेम का विकास

भारतेन्दु का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह है कि उन्होने हिन्दी साहित्य को, और उसके साथ समाज को साम्राज्य-विरोधी दिशा में बढ़ने की प्रेरणा दी। 1870 में जब कविवचनसुधा में उन्होने लॉर्ड मेयो को लक्ष्य करके 'लेवी प्राण लेवी' नामक लेख लिखा तब से हिन्दी साहित्य में एक नयी साम्राज्य-विरोधी चेतना का प्रसार आरम्भ हुआ। 6 जुलाई 1874 को कविवचनसुधा में लिखा कि जिस प्रकार अमेरिका उपनिवेशित होकर स्वतन्त्र हुआ उसी प्रकार भारत भी स्वतन्त्रता लाभ कर सकता है। उन्होने तदीय समाज की स्थापना की जिसके सदस्य स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की प्रतिज्ञा करते थे। भारतेन्दु ने विलायती कपड़ों के बहिष्कार की अपील करते हुए स्वदेशी का जो प्रतिज्ञा पत्र 23 मार्च, 1874 के 'कविवचनसुधा' में प्रकाशित किया, वह समूचे हिंदी समाज का प्रतिज्ञा पत्र बन गया। उसमें भारतेंदु ने कहा था, हमलोग सर्वांतर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहनेंगे और जो कपड़ा का पहले से मोल ले चुके हैं और आज तक हमारे पास हैं उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावैंगे पर

नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहनेंगे, हिंदुस्तान का ही बना कपड़ा पहनेंगे। हम आशा रखते हैं कि इसको बहुत ही क्या प्रायः सब लोग स्वीकार करेंगे।

सबसे पहले भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने ही साहित्य में जन भावनाओं और आकांक्षाओं को स्वर दिया था। पहली बार साहित्य में 'जन' का समावेश भारतेन्दु ने ही किया। उनके पहले काव्य में रीतिकालीन प्रवृत्तियों का ही बोलबाला था। साहित्य पतनशील सामन्ती संस्कृति का पोषक बन गया था, पर भारतेन्दु ने साहित्य को जनता की गरीबी, पराधीनता, विदेशी शासकों के अमानवीय शोषण के चित्रण और उसके विरोध का माध्यम बना दिया। अपने नाटकों, कविता, मुकरियों और प्रहसनों के माध्यम से उन्होंने अंग्रेजी राज पर कटाक्ष और प्रहार किए, जिसके चलते उन्हें अंग्रेजों का कोपभाजन भी बनना पड़ा।

भारतेंदु अंग्रेजों के शोषण तंत्र को भली-भांति समझते थे। अपनी पत्रिका कविवचनसुधा में उन्होंने लिखा था–

जब अंग्रेज विलायत से आते हैं प्रायः कैसे दरिद्र होते हैं और जब हिंदुस्तान से अपने विलायत को जाते हैं तब कुबेर बनकर जाते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि रोग और दुष्काल इन दोनों के मुख्य कारण अंग्रेज ही हैं।

यही नहीं, 20वीं सदी की शुरुआत में दादाभाई नौरोजी ने धन के अपवहन यानी ड्रेन ऑफ वेल्थ के जिस सिद्धान्त को प्रस्तुत किया था, भारतेन्दु ने बहुत पहले ही शोषण के इस रूप को समझ लिया था। उन्होंने लिखा था–

अंग्रेजी राज सुखसाज सजे अति भारी, पर सब धन विदेश चलि जात ये ख्वारी।

अंग्रेज भारत का धन अपने यहां लेकर चले जाते हैं और यही देश की जनता की गरीबी और कष्टों का मूल कारण है, इस सच्चाई को भारतेंदु ने समझ लिया था। कविवचनसुधा में उन्होंने जनता का आह्वान किया था–

भाइयो! अब तो सन्नद्ध हो जाओ और ताल ठोक के इनके सामने खड़े तो हो जाओ। देखो भारतवर्ष का धन जिसमें जाने न पावे वह उपाय करो।"

भारत की सामाजिक और आर्थिक उन्नति के लिए प्रयत्न

भारतेन्दु की वैश्विक चेतना भी अत्यन्त प्रखर थी। उन्हें अच्छी तरह पता था कि विश्व के कौन से देश कैसे और कितनी उन्नति कर रहे हैं। इसलिए उन्होंने सन् 1884 में बलिया के दादरी मेले में 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है' पर

अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया था। यह लेख उनकी अत्यन्त प्रगतिशील सोच का परिचायक भी है। इसमें उन्होने लोगों से कुरीतियों और अंधविश्वासों को त्यागकर अच्छी-से-अच्छी शिक्षा प्राप्त करने, उद्योग-धंधों को विकसित करने, सहयोग एवं एकता पर बल देने तथा सभी क्षेत्रों में आत्मनिर्भर होने का आह्वान किया था। दादरी जैसे धार्मिक और लोक मेले के साहित्यिक मंच से भारतेंदु का यह उद्‌बोधन अगर देखा जाए तो आधुनिक भारतीय सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक चिंतन का प्रस्थानबिंदु है। भाषण का एक छोटा सा अंश देखिए-

हम नहीं समझते कि इनको लाज भी क्यों नहीं आती कि उस समय में जबकि इनके पुरखों के पास कोई भी सामान नहीं था तब उन लोगों ने जंगल में पत्ते और मिट्‌टी की कुटियों में बैठ करके बाँस की नालियों से जो ताराग्रह आदि बेध करके उनकी गति लिखी है वह ऐसी ठीक है कि सोलह लाख रुपये के लागत की विलायत में जो दूरबीन बनी है उनसे उन ग्रहों को बेध करने में भी वही गति ठीक आती है और जब आज इस काल में हम लोगों को अंग्रेजी विद्या के और जनता की उन्नति से लाखों पुस्तकें और हजारों यंत्र तैयार हैं तब हम लोग निरी चुंगी के कतवार फेंकने की गाड़ी बन रहे हैं। यह समय ऐसा है कि उन्नति की मानो घुड़दौड़ हो रही है। अमेरिकन अंग्रेज फ्रांसीस आदि तुरकी ताजी सब सरपट्ट दौड़े जाते हैं। सबके जी में यही है कि पाला हमी पहले छू लें। उस समय हिन्दू काठियावाड़ी खाली खड़े-खड़े टाप से मिट्‌टी खोदते हैं। इनको औरों को जाने दीजिए जापानी टट्टुओं को हाँफते हुए दौड़ते देख करके भी लाज नहीं आती। यह समय ऐसा है कि जो पीछे रह जायेगा फिर कोटि उपाय किये भी आगे न बढ़ सकेगा। इस लूट में इस बरसात में भी जिसके सिर पर कम्बख्ती का छाता और आँखों में मूर्खता की पट्‌टी बँधी रहे उन पर ईश्वर का कोप ही कहना चाहिए।

विचारों की स्पष्टता और उसे विनोदप्रियता के साथ किस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है, इसका यह निबन्ध बेजोड़ उदाहरण है। देखिए, किस तरह भारत की चिंता इस निबन्ध में भारतेंदु व्यक्त करते हैं।

बहुत लोग यह कहेंगे कि हमको पेट के धंधे के मारे छुट्‌टी ही नहीं रहती बाबा, हम क्या उन्नति करें? तुम्हरा पेट भरा है तुमको दून की सूझती है। यह कहना उनकी बहुत भूल है। इंगलैंड का पेट भी कभी यों ही खाली था। उसने एक हाथ से पेट भरा, दूसरे हाथ से उन्नति की राह के कांटों को साफ किया।

वास्तव में उनका यह लेख भारत दुर्दशा नामक उनके नाटक का एक तरह से वैचारिक विस्तार है। भारत दुर्दशा में वे कहते हैं,

रोअहुं सब मिलिकै आवहुं भारत भाई।
हा, हा ! भारत दुर्दशा देखी न जाई।

भारतेन्दु अच्छी तरह समझ चुके थे कि 'अंग्रेजी शासन भारतीयों के लाभ के लिए है' यह पूर्णत: खोखला दावा था और दुष्प्रचार था। अँग्रेज किस तरह भारत की संपदा लूट रहे थे, इसका संकेत भारतेन्दु ने 'कविवचनसुधा' के 7 मार्च, 1874 के अंक में अपनी टिप्पणी में दिया।

सरकारी पक्ष का कहना है कि हिंदुस्तान में पहले सब लोग लड़ते-भिड़ते थे और आपस में गमनागमन न हो सकता था। यह सब सरकार की कृपा से हुआ। हिंदुस्तानियों का कहना है कि उद्योग और व्यापार बाकी नहीं। रेल आदि से भी द्रव्य के बढ़ने की आशा नहीं है। रेलवे कंपनी वाले जो द्रव्य व्यय किया है, उसका व्याज सरकार को देना पड़ता है और उसे लेने वाले बहुधा विलायत के लोग हैं। कुल मिलाकर 26 करोड़ रुपया बाहर जाता है।

भारतेन्दु स्त्री-पुरुष की समानता के इतने बड़े पैरोकार थे कि 'कविवचनसुधा' के 3 नवंबर, 1873 के अंक में उन्होंने लिखा।

यह बात सिद्ध है कि पश्चिमोत्तर देश की कदापि उन्नति नहीं होगी, जब तक यहाँ की स्त्रियों की भी शिक्षा न होगी क्योंकि यदि पुरुष विद्वान होंगे और उनकी स्त्रियाँ मूर्ख तो उनमें आपस में कभी स्नेह न होगा और नित्य कलह होगी।

प्रतापनारायण मिश्र

प्रतापनारायण मिश्र (24 सितंबर, 1856 - 6 जुलाई, 1894) भारतेन्दु मंडल के प्रमुख लेखक, कवि और पत्रकार थे। वह भारतेंदु निर्मित एवं प्रेरित हिंदी लेखकों की सेना के महारथी, उनके आदर्शो के अनुगामी और आधुनिक हिंदी भाषा तथा साहित्य के निर्माणक्रम में उनके सहयोगी थे। भारतेंदु पर उनकी अनन्य श्रद्धा थी, वह अपने आप को उनका शिष्य कहते तथा देवता की भाँति उनका स्मरण करते थे। भारतेंदु जैसी रचनाशैली, विषयवस्तु और भाषागत विशेषताओं के कारण मिश्र जी 'प्रति-भारतेंदु' और 'द्वितीय हरिश्चंद्र' कहे जाने लगे थे।

जीवनी

मिश्र जी उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के अंतर्गत बैजे गाँव निवासी, कात्यायन गोत्रीय, कान्यकुब्ज ब्राह्मण पं. संकठा प्रसाद मिश्र के पुत्र थे। बड़े होने

पर वह पिता के साथ कानपुर में रहने लगे और अक्षरारंभ के पश्चात उनसे ही ज्योतिष पढ़ने लगे। किंतु उधर रुचि न होने से पिता ने उन्हें अंग्रेजी स्कूल में भरती करा दिया। तब से कई स्कूलों का चक्कर लगाने पर भी वह पिता की लालसा के विपरीत पढ़ाई-लिखाई से विरत ही रहे और पिता की मृत्यु के पश्चात् 18-19 वर्ष की अवस्था में उन्होंने स्कूली शिक्षा से अपना पिंड छुड़ा लिया।

इस प्रकार मिश्रजी की शिक्षा अधूरी ही रह गई। किंतु उन्होंने प्रतिभा और स्वाध्याय के बल से अपनी योग्यता पर्याप्त बढ़ा ली थी। वह हिंदी, उर्दू और बँगला तो अच्छी जानते ही थे, फारसी, अँगरेजी और संस्कृत में भी उनकी अच्छी गति थी।

मिश्र जी छात्रवस्था से ही 'कविवचनसुधा' के गद्य-पद्य-मय लेखों का नियमित पाठ करते थे, जिससे हिंदी के प्रति उनका अनुराग उत्पन्न हुआ। लावनी गायकों की टोली में आशु रचना करने तथा ललितजी की रामलीला में अभिनय करते हुए उनसे काव्यरचना की शिक्षा ग्रहण करने से वह स्वयं मौलिक रचना का अभ्यास करने लगे। इसी बीच वह भारतेंदु के संपर्क में आए। उनका आशीर्वाद तथा प्रोत्साहन पाकर वह हिंदी गद्य तथा पद्य रचना करने लगे। 1882 के आसपास 'प्रेमपुष्पावली' प्रकाशित हुई और भारतेंदु जी ने उसकी प्रशंसा की तो उनका उत्साह बहुत बढ़ गया।

15 मार्च 1883 को, होली के दिन, अपने कई मित्रों के सहयोग से मिश्रजी ने 'ब्राह्मण' नामक मासिक पत्र निकाला। यह अपने रूप-रंग में ही नहीं, विषय और भाषाशैली की दृष्टि से भी भारतेंदु युग का विलक्षण पत्र था। सजीवता, सादगी, बाँकपन और फक्कड़पन के कारण भारतेंदुकालीन साहित्यकारों में जो स्थान मिश्रजी का था, वही तत्कालीन हिंदी पत्रकारिता में इस पत्र का था, किंतु यह कभी नियत समय पर नहीं निकलता था। दो-तीन बार तो इसके बंद होने तक की नौबत आ गई थी। इसका कारण मिश्रजी का व्याधिमंदिर शरीर और अर्थाभाव था। रामदीन सिंह आदि की सहायता से यह येनकेन प्रकारेण संपादक के जीवनकाल तक निकलता रहा। उनकी मृत्यु के बाद भी रामदीन सिंह के संपादकत्व में कई वर्षों तक निकला, परंतु पहले जैसा आकर्षण उसमें न रहा।

1889 में मिश्र जी 25 रू. मासिक पर 'हिंदोस्थान' के सहायक संपादक होकर कालाकाँकर आए। उन दिनों पं. मदनमोहन मालवीय उसके संपादक थे।

यहाँ बालमुकुंद गुप्त ने मिश्रजी से हिंदी सीखी। मालवीय जी के हटने पर मिश्रजी अपनी स्वच्छंद प्रवृत्ति के कारण वहाँ न टिक सके। कालाकाँकर से लौटने के बाद वह प्रायः रुग्ण रहने लगे। फिर भी समाजिक, राजनीतिक, धार्मिक कार्यो में पूर्ववत रुचि लेते रहे और 'ब्राह्मण' के लिए लेख आदि प्रस्तुत करते रहे। 1891 में उन्होंने कानपुर में 'रसिक समाज' की स्थापना की। कांग्रेस के कार्यक्रमों के अतिरिक्त भारतधर्ममंडल, धर्मसभा, गोरक्षिणी सभा और अन्य सभा-समितियों के सक्रिय कार्यकर्ता और सहायक बने रहे। कानपुर की कई नाट्य सभाओं और गोरक्षिणी समितियों की स्थापना उन्हीं के प्रयत्नों से हुई थी।

मिश्रजी जितने परिहासप्रिय और जिंदादिल व्यक्ति थे उतने ही अनियमित, अनियंत्रित, लापरवाह और काहिल थे। रोग के कारण उनका शरीर युवावस्था में ही जर्जर हो गया था। तो भी स्वास्थ्यरक्षा के नियमों का वह सदा उल्लंघन करते रहे। इससे उनका स्वास्थ्य दिनों-दिन गिरता गया। 1892 के अंत में वह गंभीर रूप से बीमार पड़े और लगातार डेढ़ वर्षो तक बीमार ही रहे। अंत में 38 वर्ष की आयु में 6 जुलाई 1894 को दस बजे रात में भारतेंदु मंडल के इस नक्षत्र का अवसान हो गया।

रचनाएँ

प्रतापनारायण मिश्र भारतेंदु के विचारों और आदर्शों के महान प्रचारक और व्याख्याता थे। वह प्रेम को परमधर्म मानते थे। हिंदी, हिंदू, हिदुस्तान उनका प्रसिद्ध नारा था। समाजसुधार को दृष्टि में रखकर उन्होंने सैकड़ों लेख लिखे हैं। बालकृष्ण भट्ट की तरह वह आधुनिक हिंदी निबंधों को परंपरा को पुष्ट कर हिंदी साहित्य के सभी अंगों की पूर्णता के लिये रचनारत रहे। एक सफल व्यंग्यकार और हास्यपूर्ण गद्य-पद्य-रचनाकार के रूप में हिंदी साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान है। मिश्र जी की मुख्य कृतियाँ निम्नांकित हैं–

(क) नाटक– गो संकट, भारत दुर्दशा, कलिकौतुक, कलिप्रभाव, हठी हम्मीर। जुआरी-खुआरी (प्रहसन)। संगीत शाकुंतल (कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुंतम्' का अनुवाद)।

(ख) निबंध संग्रह– निबंध नवनीत, प्रताप पीयूष, प्रताप समीक्षा।

(ग) अनूदित गद्य कृतियाँ– राजसिंह, अमरसिंह, इन्दिरा, राधारानी, युगलांगुरीय, चरिताष्टक, पंचामृत, नीतिरत्नमाला

(घ) कविता–प्रेम पुष्पावली, मन की लहर, ब्रैडला स्वागत, दंगल खंड, तृप्यन्ताम्, लोकोक्तिशतक, दीवो बरहमन (उर्दू)।

वर्ण्य-विषय

मिश्रजी के निबंधों में विषय की पर्याप्त विविधता है। देव-प्रेम, समाज-सुधार एवं साधारण मनोरंजन आदि मिश्रजी के निबंधों के मुख्य विषय थे। उन्होंने 'ब्राह्मण' मासिक पत्र में हर प्रकार के विषय पर निबंध लिखे। जैसे - घूरे के लत्ता बीने-कनातन के डोल बांधे, समझदार की मौत है, आप, बात, मनोयोग, बृद्ध, भौं, मुच्छ, ह, ट, द आदि।

मिश्रजी 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' के कट्टर समर्थक थे, अतः उनकी रचनाओं में इनके प्रति विशेष मोह प्रकट हुआ है।

भाषा

खड़ीबोली के रूप में प्रचलित जनभाषा का प्रयोग मिश्रजी ने अपने साहित्य में किया। प्रचलित मुहावरों, कहावतों तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग इनकी रचनाओं में हुआ है। भाषा की दृष्टि से मिश्रजी ने भारतेंदु का अनुसरण किया और जन साधारण की भाषा को अपनाया। भारतेंदुजी के समान ही मिश्रजी भाषा की कृतिमता से दूर रहे। उनकी भाषा स्वाभाविक है। उसमें पंडिताऊपन और पूर्वीपन अधिक है तथा ग्रामीण शब्दों का प्रयोग स्वच्छंदता पूर्वक हुआ है। संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी, आदि के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग है। भाषा विषय के अनुकूल है। गंभीर विषयों पर लिखते समय भाषा और गंभीर हो गई है। कहावतों और मुहावरों के प्रयोग में मिश्रजी बड़े कुशल थे। मुहावरों का जितना सुंदर प्रयोग उन्होंने किया है, वैसा बहुत कम लेखकों ने किया है। कहीं-कहीं तो उन्होंने मुहावरों की झड़ी-सी लगा दी है।

शैली

मिश्रजी की शैली वर्णनात्मक, विचारात्मक तथा हास्य-व्यंग्यात्मक है।

विचारात्मक शैली- साहित्यिक और विचारात्मक निबंधों में मिश्रजी ने इस शैली को अपनाया है। कहीं-कहीं इस शैली में हास्य और व्यंग्य का पुट भी मिलता है। इस शैली की भाषा संयत और गंभीर है। 'मनोयोग' शीर्षक निबंध का एक अंश देखिए-इसी से लोगों ने कहा है कि मन शरीर रूपी नगर का राजा

है। और स्वभाव उसका चंचल है। यदि स्वच्छ रहे तो बहुधा कुत्सित ही मार्ग में धावमान रहता है।

व्यंग्यात्मक शैली – इस शैली में मिश्रजी ने अपने हास्य-व्यंग्यपूर्ण निबंध लिखे हैं। यह शैली मिश्रजी की प्रतिनिधि शैली है, जो सर्वथा उनके अनुकूल है। वे हास्य-विनोद प्रिय व्यक्ति थे। अत: प्रत्येक विषय का प्रतिपादन हास्य और विनोदपूर्ण ढंग से करते थे। हास्य और विनोद के साथ-साथ इस शैली में व्यंग्य के दर्शन होते हैं। विषय के अनुसार व्यंग्य कहीं-कहीं बड़ा तीखा और मार्मिक हो गया है। इस शैली में भाषा सरल, सरस और प्रवाहमयी है। उसमें उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग हुआ है। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग के कारण यह शैली अधिक प्रभावपूर्ण हो गई है। एक उदाहरण देखिए-दो-एक बार धोखा खाके धोखेबाजों की हिकमत सीख लो और कुछ अपनी ओर से झपकी-फुंदनी जोड़ कर उसी की जूती उसी का सर कर दिखाओ तो बड़े भारी अनुभवशाली वरंच 'गुरु गुड़ ही रहा और चेला शक्कर हो गया' का जीवित उदाहरण कहलाओगे।

समालोचना

मिश्रजी भारतेंदु मंडल के प्रमुख लेखकों में से एक हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य की विविध रूपों में सेवा की। वे कवि होने के साथ-साथ उच्चकोटि के मौलिक निबंध लेखक और नाटककार थे। हिंदी गद्य के विकास में मिश्रजी का बड़ा योगदान रहा है। आचार्य शुक्ल जी ने पं. बालकृष्ण भट्ट के साथ मिश्रजी को भी महत्व देते हुए अपने हिंदी-साहित्य के इतिहास में लिखा है- पं. प्रतापनारायण मिश्र और पं. बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी गद्य साहित्य में वही काम किया जो अंग्रेजी गद्य साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया।

बदरीनारायण चौधरी उपाध्याय 'प्रेमधन'

बदरीनारायण चौधरी उपाध्याय 'प्रेमधन' हिन्दी साहित्यकार थे। वे भारतेन्दु मण्डल के उज्वलतम नक्षत्र थे।

जीवनी

'प्रेमधन' जी पं. गुरुचरणलाल उपाध्याय के पुत्र थे। गुरुचरणलाल उपाध्याय, कर्मनिष्ठ तथा विद्यानुरागी ब्राह्मण थे। संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार

में आपने तन-मन-धन से योगदान किया। इस तपस्वी एवं विद्याप्रेमी ब्राह्मण के उपाध्याय जी ज्येष्ठ पुत्र थे। आप सरयूपारीण ब्राह्मण कुलोद्भूत भारद्वाज गोत्रीय खोरिया उपाध्याय थे। आपका जन्म भाद्र कृष्ण षष्ठी, संवत् 1912 तदनुसार 1 सितम्बर 1855 ई. को दत्तापुर, आजमगढ़ में हुआ था। इनकी माता ने मीरजापुर में हिंदी अक्षरों का ज्ञान कराया। फारसी की शिक्षा का आरम्भ भी घर पर करा दिया गया। अंग्रेजी शिक्षा के लिए आप गोंडा (अवध) भेजे गए। यहाँ आपका संपर्क अयोध्यानरेश महाराज सर प्रतापनारायण सिंह (ददुआ साहेब), महाराज उदयनारायण सिंह, लाला त्रिलोकी नाथ प्रभृत ताल्लुकेदारों से हुआ। इस संसर्गज गुण से आपको मृगया, गजसंचालन, निशानेबाजी, घोड़ासवारी आदि ताल्लुकदारी शौकों में रुचि हुई। उच्च शिक्षा पाने के लिए संवत् 1924 में फैजाबाद चले आए। पैत्रिक व्यवसाय और रियासत के प्रबंध के लिए मीरजापुर आ जाना पड़ा।

चौधरी गुरुचरणलाल विद्याव्यसनी थे। उन्होंने अंग्रेजी, हिंदी और फारसी के साथ ही साथ संस्कृत की शिक्षा की व्यवस्था की तथा पं. रामानन्द पाठक को अभिभावक शिक्षक नियुक्त किया। पाठक जी काव्यमर्मी एवं रसज्ञ थे। इनके साहचर्य से कविता में रुचि हुई। इन्हीं के उत्साह और प्रेरणा से पद्यरचना करने लगे। संपन्नता और यौवन के संधिकाल में आपका झुकाव संगीत की ओर हुआ और ताल, लय, राग, रागिनी का आपको परिज्ञान हो गया विशेषत: इसलिए कि वे रसिक व्यक्ति थे और रागरंग में अपने को लिप्त कर सके थे। संवत् 1928 में कलकत्ते से अस्वस्थ होकर आए और लंबी बीमारी में फँस गए। इसी बीमारी के दौरान में आपकी पं. इन्द्र नारायण सांगलू से मैत्री हुई। सांगलू जी शायरी करते थे और अपने मित्रों को शायरी करने के लिए प्रेरित भी करते। इस संगत से नज्मों और गजलों की ओर रुचि हुई। उर्दू फारसी का आपको गहरा ज्ञान था ही। अस्तु, इन रचनाओं के लिए 'अब्र' (तखल्लुस) उपनाम रखकर गजल, नज्म और शेरों की रचना करने लगे। सांगलू के माध्यम से आपकी भारतेन्दु बाबू, हरिश्चन्द्र से मैत्री का सूत्रपात हुआ। धीरे-धीरे यह मैत्री इतनी प्रगाढ़ हुई कि भारतेन्दु जी के रंग में प्रेमघन जी पूर्णतया पग गए, यहाँ तक कि रचनाशक्ति, जीवनपद्धति और वेशभूषा से भी भारतेन्दु जीवन अपना लिया।

वि. सं. 1930 में प्रेमधन जी ने 'सद्धर्म सभा' तथा 1931 वि. सं. 'रसिक समाज' की मीरजापुर में स्थापना की। संवत् 1933 वि. में 'कवि-वचन-सुधा' प्रकाशित हुई जिसमें इनकी कृतियों का प्रकाशन होता। उसका स्मरण चौधरी जी की मीरजापुर की कोठी का धूलिधूसरित नृत्यकक्ष

आज भी कराता है। अपने प्रकाशनों की सुविधा के लिए इसी कोठी में आनंदकादंबिनी मुद्रणालय खोला गया। संवत् 1938 में 'आनंदकादंबिनी' नामक मासिक पत्रिका की प्रथम माला प्रकाशित हुई। संवत् 1949 में नागरी नीरद नामक साप्ताहिक का संपादन और प्रकाशन आरंभ किया। प्रेमधन जी के साथ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का पारिवारिक-सा सम्बन्ध था। शुक्ल जी शहर के रमईपट्टी मुहल्ले में रहते थे और लंडन मिशन स्कूल में ड्राइंग मास्टर थे। आनन्द कादंबिनी प्रेस में छपाई भी देख लेते थे। चौधरी बंधुओं की सत्प्रेरणा और साहचर्य से अयोध्यानरेश ने युगप्रसिद्ध छन्दशास्त्र और रसग्रन्थ रसकुसुमाकर की रचना करवाई। रसकुसमाकर की व्याख्याशैली, संकलन, भाव, भाषा, चित्र चित्रण में आज तक इस बेजोड़ ग्रंथ को चुनौती देने में कोई रचना समर्थ नहीं हो सकी है यद्यपि यह ग्रंथ निजी व्यय पर निजी प्रसारण के लिए मुद्रित हुआ था। भारतेंदु जी की आयु 34 वर्ष की थी। मित्र प्रेमधन जी ने इससे पूरी दूनी आयु पाई यानी 68 वर्ष की अवस्था में फाल्गुन शुक्ल 14, संवत् 1978 को आपकी इहलीला समाप्त हो गई।

प्रेमधन जी आधुनिक हिंदी के आविर्भाव काल में उत्पन्न हुए थे। उनके अनेक सममायिक थे जिन्होंने हिंदी को हिंदी का रूप देने में संपूर्ण योगदान किया। इनमें प्रमुख प्रतापनारायण मिश्र, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, पं. सुधाकर द्विवेदी, पं. गोविन्दनारायण मिश्र, पं. बालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह, बाबू राधाकृष्णदास, पं. किशोरीलाल गोस्वामी तथा रामकृष्ण वर्मा प्रभृत साहित्यिक थे।

कृतित्त्व

प्रेमघन की रचनाओं का क्रमशः तीन खंडों में विभाजन किया जाता है–1. प्रबंध काव्य 2. संगीत काव्य 3. स्फुट निबंध। वे कवि ही नहीं उच्च कोटि के गद्यलेखक और नाटककार भी थे। गद्य में निबंध, आलोचना, नाटक, प्रहसन, लिखकर अपनी साहित्यिक प्रतिभा का बड़ी पटुता से निर्वाह किया है। आपकी गद्य रचनाओं में हास परिहास का पुटपाक होता था। कथोपकथन शैली का आपके 'दिल्ली दरबर में मित्रमंडली के यार में देहलवी उर्दू का फारसी शब्दों से संयुक्त चुस्त मुहावरेदार भाषा का अच्छा नमूना है। गद्य में खड़ी बोली के शब्दों का प्रयोग (संसृत के तत्सम तथा तद्भव शब्द) आलंकारिक योजना के साथ प्रयुक्त हुआ। प्रेमघन की गद्यशैली की समीक्षा से यह स्पष्ट हो जाता है कि खड़ी बोली गद्य के वे प्रथम आचार्य थे। समालोच्य पुस्तक के विषयों का अच्छी

तरह विवेचन करके उसके विस्तृत निरूपण की चाल उन्होंने चलाई (रामचंद्र शुक्ल)।

उन्होंने कई नाटक लिखे हैं जिनमें 'भारत सौभाग्य' 1888 में कांग्रेस महाधिवेशन के अवसर पर खेले जाने के लिए लिखा गया था।

प्रेमघन का काव्यक्षेत्र विस्तृत था। वे ब्रजभाषा को कविता की भाषा मानते थ। प्रेमघन ने जिस प्रकार खड़ी बोली का परिमार्जन किया उनके काव्य से स्पष्ट है। 'बेसुरी तान' शीर्षक लेख में आपने भारतेंदु की आलोचना करने में भी चूक नहीं की। प्रेमघन कृतियों का संकलन उनके पौत्र दिनेशनारायण उपाध्याय ने किया है जिसका 'प्रेमघन सर्वस्व' नाम से हिंदी साहित्य सम्मेलन ने दो भागों में प्रकाशन किया है। प्रेमघन हिंदी साहित्य सम्मेलन के तृतीय कलकत्ता अधिवेशन के सभापति (सं. 1912) मनोनीत हुए थे।

कृतियाँ

(1) भारत सौभाग्य (2) प्रयाग रामागमन, संगीत सुधासरोवर, भारत भाग्योदय काव्य।

गद्य पद्य के अलावा आपने लोकगीतात्मक कजली, होली, चैता आदि की रचना भी की है, जो ठेठ भावप्रवण मीरजापुरी भाषा के अच्छे नमूने हैं और संभवत: आज तक बेजोड़ भी। कजली कादंबिनी में कजलियों का संग्रह है। प्रेमघन जी का स्मरण हिंदी साहित्य के प्रथम उत्थान का स्मरण है।

पत्रिका - 1881 को मिर्जापुर से 'आनन्द कादम्बनी' इनके द्वारा ही संपादित की गई।

राधाचरण गोस्वामी

राधाचरण गोस्वामी (25 फरवरी 1859 - 12 दिसम्बर 1925) हिन्दी के भारतेन्दु मण्डल के साहित्यकार जिन्होंने ब्रजभाषा-समर्थक कवि, निबन्धकार, नाटकरकार, पत्रकार, समाजसुधारक, देशप्रेमी आदि भूमिकाओं में भाषा, समाज और देश को अपना महत्वपूर्ण अवदान दिया। आपने अच्छे प्रहसन लिखे हैं।

जीवन परिचय

गोस्वामी जी के पिता गल्लू जी महाराज अर्थात् गुणमंजरी दास जी (1827 ई.-1890 ई.) एक भक्त कवि थे। उनमें किसी प्रकार की धार्मिक कट्टरता और

रूढ़िवादिता नहीं थी, प्रगतिशीलता और सामाजिक क्रान्ति की प्रज्ज्वलित चिनगारियाँ थीं। उनमें राष्ट्रवादी राजनीति की प्रखर चेतना थी।

भारतवर्ष की तत्कालीन राजनीतिक और राष्ट्रीय चेतना की नब्ज पर उनकी उँगली थी और नवजागरण की मुख्यधारा में राधाचरण गोस्वामी जी सक्रिय एवं प्रमुख भूमिका थी। उन्होने 1883 ई. में पश्चिमोत्तर और अवध में आत्मशासन की माँग की थी। मासिक पत्र 'भारतेन्दु' (वैशाख शुक्ल 15 विक्रम संवत् 1940 तदनुसार 22 मई 1883 ई.) में उन्होंने 'पश्चिमोत्तर और अवध में आत्मशासन' शीर्षक से सम्पादकीय अग्रलेख लिखा था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बनारस, इलाहाबाद, पटना, कलकत्ता और वृन्दावन नवजागरण के पाँच प्रमुख केन्द्र थे। वृन्दावन केन्द्र के एकमात्र सार्वकालिक प्रतिनिधि राधाचरण गोस्वामी ही थे।

गोस्वामी जी देशवासियों की सहायता से देशभाषा हिन्दी की उन्नति करना चाहते थे। देशभाषा की उन्नति के लिए सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 1882 ई. में देशभाषा की उन्नति के लिए अलीगढ़ में भाषावर्धिनी सभा को अपना सक्रिय समर्थन प्रदान करते हुए कहा था, '...यदि हमारे देशवासियों की सहायता मिले, तो इस सभा से भी हमारी देशभाषा की उन्नति होगी।'

गोस्वामी जी सामाजिक रूढ़ियों के उग्र किन्तु अहिंसक विरोधी थे। वे जो कहते थे, उस पर आचरण भी करते थे। अपने आचरण के द्वारा वे गलत सामाजिक परमपराओं का शान्तिपूर्ण विरोध करते थे।

पण्डित राधाचरण 1885 ई. में वृन्दावन नगरपालिका के सदस्य पहली बार निर्वाचित हुए थे। 10 मार्च, 1897 ई. को वे तीसरी बार नगरपालिका के सदस्य निर्वाचित हुए थे। नगरपालिका के माध्यम से वृन्दावन की कुंजगलियों में छः पक्की सड़कों का निर्माण उन्होंने कराया था।

पंजाब केसरी लाला लाजपत राय का आगमन दो बार वृन्दावन में हुआ था। दोनों बार गोस्वामी जी ने उनका शानदार स्वागत किया था। ब्रज माधव गौड़ीय सम्प्रदाय के श्रेष्ठ आचार्य होने के बावजूद उनकी बग्घी के घोड़ों के स्थान पर स्वयं उनकी बग्घी खींचकर उन्होंने भारत के राष्ट्रनेताओं के प्रति अपनी उदात्त भावना का सार्वजनिक परिचय दिया था।

तत्कालीन महान क्रान्तिकारियों में उनके प्रति आस्था और विश्वास था और उनसे उनके हार्दिक सम्बन्ध भी थे। उदाहरणार्थ, 22 नवम्बर 1911 ई. को

महान क्रान्तिकारी रास बिहारी बोस और योगेश चक्रवर्ती उनसे मिलने उनके घर पर आए थे और उनका प्रेमपूर्ण स्वागत उन्होंने किया था। उक्त अवसर पर गोस्वामीजी की दोनों आँखें प्रेम के भावावेश के कारण अश्रुपूर्ण हो गई थीं।

गोस्वामी जी कांग्रेस के आजीवन सदस्य और प्रमुख कार्यकर्ता थे। 1888 ई. से 1894 तक वे मथुरा की कांग्रेस समिति के सचिव थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा में स्वयं कहा है ''देशोन्नति, नेशनल कांग्रेस, समाज संशोधन, स्त्री स्वतन्त्रता यह सब मेरी प्राणप्रिय वस्तुएँ हैं।''

गोस्वामी जी में प्रखर राजनीतिक चेतना थी। वे तत्कालीन प्रमुख राजनीतिक विषयों पर अपने समय की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अखिल भारतीय स्तर पर लेखादि लिखते रहते थे। उन्होंने 'सारसुधानिधि', विक्रम संवत् 1937, वैशाख 29 चन्द्रवार 10 मई 1880 (भाग 2 अंक 5) में प्राप्त 'स्तंभ' के अन्तर्गत 'काबुल का अचिन्त्य भाव' शीर्षक लेख लिखा था। इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

उन्होंने विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर अपनी लेखनी चलाई और नाना प्रकार की तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों पर तेज प्रहार किए।

गोस्वामी जी के सतत प्रयत्न से मथुरा वृन्दावन रेल का संचालन हुआ।

गोस्वामी राधाचरण के पिता गल्लूजी महाराज का निधन 1890 ई. में हो गया था। उनके निधन का अनुचित लाभ उठाकर उनके ही सम्प्रदाय में एक अप्रिय विवाद उत्पन्न हो गया कि इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु के जन्मदिन पर व्रत रखा जाए या नहीं और चैतन्य महाप्रभु का पूजन श्रीकृष्ण मन्त्र से किया जाए अथवा श्रीमहाप्रभु के ही मन्त्र से किया जाए। इस विवाद ने प्रायः दो वर्षों तक व्यापक रूप धारण कर लिया था। अन्त में गोस्वामी राधाचरण जी ने विभिन्न प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि महाप्रभु चैतन्य के व्रत और मन्त्र सर्वथा स्वतन्त्र हैं। इस गम्भीर विवाद पर विजय प्राप्त करने पर नवद्वीप और वृन्दावन के साम्प्रदायिक आचार्यों ने उन्हें 'विद्यावागीश' की उपाधि ससम्मान प्रदान की थी।

वृन्दावन के राधारमण मन्दिर में अढ़ाई वर्षों के अन्तराल में 17 दिनों की सेवा करने का अधिकार उन्हें प्राप्त था। अपने निधन के चार दिन पूर्व तक श्रीराधारमण जी की मंगला आरती प्रातः चार बजे वे स्वयं करते थे।

गोस्वामीजी के जीवन दर्शन का मूल संदेश धर्म, जाति, वर्ग और साहित्य की विविधता में एकता का समन्वय था। उन्हें संकीर्ण और कुंठित भावनाएँ स्पर्श

नहीं करती थीं। डाक और रेल के टिकटों में भी नागरी लिपि का प्रवेश होना चाहिए था, इसके लिये उन्होंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखे थे। कलकत्ता से प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'सारसुधानिधि', 12 सितम्बर 1881 ई. में उन्होंने कहा था-

रेल की टिकटों में नागरी नहीं लिखी जाती है जिससे नागरी का प्रचार नहीं हो पाता। क्या रेलवे अध्यक्षों को नागरी से शत्रुता है या हमारे देशवासी नागरी जानते ही नहीं।

इससे पूर्व उन्होंने 'सारसुधानिधि' 7 अगस्त 1881 ई. को यह सवाल उठाया था कि आर्य राजाओं ने अपनी रियासतों में फारसी सिक्का क्यों जारी रखा है? स्वजातीयाभिमान का प्रश्न था।

गोस्वामी जी सर्वधर्म समभाव के सिद्धान्त के प्रतीक थे। श्रीराधारमण जी के अनन्य उपासक और ब्राह्म माध्व गौड़ीय सम्प्रदाय के मुख्य आचार्य होने के बावजूद उनमें किसी भी धर्म अथवा धार्मिक सम्प्रदाय के प्रति दुराव अथवा दुराग्रह नहीं था। अपने जीवन चरित के नौवें पृष्ठ पर उन्होंने स्वयं लिखा है-

''मैं एक कट्टर वैष्णव हिन्दू हूँ। अन्य धर्म अथवा समाज के लोगों से विरोध करना उचित नहीं समझता। बहुत से आर्यसमाजी, ब्रह्म समाजी, मुसलमान, ईसाई मेरे सच्चे मित्र हैं और बहुधा इनके समाजों में जाता हूँ।''

गोस्वामी जी विधवा विवाह के कट्टर समर्थक थे। उन्होंने अनेक असहाय बाल विधवाओं के पुनर्विवाह स्वयं पिता बनकर कराया थे। उनके विरोधी एतदर्थ उन पर अवांछित आक्षेप भी करते थे। विधवा विवाह के समर्थन में विविध पत्र-पत्रिकाओं में उन्होंने अनेक विचारोत्तेजक लेख लिखे। विधवा विवाह के पक्ष में उन्होंने 'विधवा विपत्ति' और 'बाल विधवा' शीर्षक दो उपन्यास भी लिखे थे।

साहित्य सेवा

गोस्वामी राधाचरण के साहित्यिक जीवन का उल्लेखनीय आरम्भ 1877 ई. में हुआ। इस वर्ष उनकी पुस्तक 'शिक्षामृत' का प्रकाशन हुआ। यह उनकी प्रथम पुस्तकाकार रचना है। तत्पश्चात् मौलिक और अनूदित सब मिलाकर पचहत्तर पुस्तकों की रचना उन्होंने की। इनके अतिरिक्त उनकी प्राय: तीन सौ से ज्यादा विभिन्न कोटियों की रचनाएँ तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में फैली हुई हैं जिनका संकलन अब तक नहीं किया जा सका।

उनकी साहित्यिक उपलब्धियों की अनेक दिशाएँ हैं। वे कवि थे किन्तु हिन्दी गद्य की विभिन्न विधाओं की श्रीवृद्धि भी उन्होंने की। उन्होंने राधाकृष्ण की लीलाओं, प्रकृति-सौन्दर्य और ब्रज संस्कृति के विभिन्न पक्षों पर काव्य-रचना की। कविता में उनका उपनाम 'मंजु' था।

गोस्वामी राधाचरण ने समस्या प्रधान मौलिक उपन्यास लिखे। 'बाल विधवा' (1883-84 ई.), 'सर्वनाश' (1883-84 ई.), 'अलकचन्द' (अपूर्ण 1884-85 ई.) 'विधवा विपत्ति' (1888 ई.) 'जाविंत्र' (1888 ई.) आदि। वे हिन्दी में प्रथम समस्यामूलक उपन्यासकार थे, प्रेमचन्द नहीं। 'वीरबाला' उनका ऐतिहासिक उपन्यास है। इसकी रचना 1883-84 ई. में उन्होंने की थी। हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास का आरम्भ उन्होंने ही किया। ऐतिहासिक उपन्यास 'दीप निर्वाण' (1878-80 ई.) और सामाजिक उपन्यास 'विरजा' (1878 ई.) उनके द्वारा अनूदित उपन्यास है। लघु उपन्यासों को वे 'नवन्यास' कहते थे। 'कल्पलता' (1884-85 ई.) और 'सौदामिनी' (1890-91 ई.) उनके मौलिक सामाजिक नवन्यास हैं।

प्रेमचन्द के पूर्व ही गोस्वामी जी ने समस्यामूलक उपन्यास लिखकर हिन्दी में नई धारा का प्रवर्त्तन किया।

गोस्वामी जी के नाटकों और प्रहसनों में उनकी सुधारवादी चेतना ही सर्वप्रमुख है। 'बूढ़े मुँह मुँहासे लोग देखें तमाशे' नामक प्रहसन में हिन्दू और मुसलमान किसान एक साथ जमींदार के प्रति सम्मिलित विद्रोह करते हैं और अपनी समस्याओं का निराकरण करते हैं। किसानों की समस्याओं में धर्म का विभेद नहीं होता।

उनका व्यंग्य लेखन भी उत्कृष्ट कोटि का है। उदाहरणार्थ, मासिक पत्र 'हिन्दी प्रदीप' आषाढ़ शुक्ल 15 विक्रम संवत् 1939 तदनुसार 1 जुलाई 1882 ई. (जिल्द 5 संख्या 11) में पृष्ठ संख्या 9 पर गोस्वामी जी द्वारा विरचित 'एक नए कोष की नकल' का प्रकाशन हुआ था जिसमें व्यंग्य की प्रचुरता है। उक्त 'नकल' के कतिपय अंश अधोलिखित है-

मधुर भाषा। अँग्रेजी।
शरीफों की जबान।
उर्दू या राजा शिव प्रसाद जिसे कहैं।
जंगली लोगों की भाषा।
संस्कृत-हिन्दी परम कर्तव्य।

खुशामद खुशामद।

अकर्तव्य। देश का हित, भारतवासियों की भलाई।

उक्त व्यंग्य में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की भारतीय मानसिकता का दिग्दर्शन होता है।

गोस्वामी जी एक श्रेष्ठ समालोचक भी थे। उनकी प्रतिज्ञा थी ''किसी पुस्तक की समालोचना लिखो तो सत्य-सत्य लिखो।''

निबन्ध लेखन के क्षेत्र में उनका उल्लेखनीय योगदान रहा है। उनके निबन्धों का वर्ण्य विषय अत्यन्त व्यापक था। उन्होंने ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, शिक्षा और यात्रा सम्बन्धी लेख लिखे। तत्कालीन विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में उनके बहुसंख्यक लेख बिखरे हुए हैं जिनका संकलन अब तक नहीं किया जा सका।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी गद्य और पद्य की भाषा में एकरूपता का अभाव था। हिन्दी गद्य खड़ी बोली और पद्य ब्रजभाषा में था। संसार के किसी भी साहित्य में गद्य और पद्य की भाषा विषयक विसंगति नहीं थी। 1887 ई. में अयोध्या प्रसाद खत्री के सम्पादन में खड़ी बोली का पद्य का प्रकाशन हुआ। खत्री जी ने हिन्दी साहित्य की इस भाषा विषयक विसंगति के विरोध में आन्दोलन किया। इस पर व्यापक विवाद हुआ था। खड़ी बोली पद्य आन्दोलन का आरम्भ हिन्दोस्तान (दैनिक पत्र) 11 नवम्बर 1887 ई. से हुआ जब राधाचरण गोस्वामी ने खड़ी बोली पद्य का सक्रिय विरोध किया। गोस्वामी जी का कथन था कि ''यदि खड़ी बोली में कविता की चेष्टा की जाए तो खड़ी बोली के स्थान पर थोड़े दिनों में उर्दू की कविता का प्रचार हो जाएगा।'' (हिन्दोस्तान, 11 अप्रैल 1888 ई.)

गोस्वामी जी द्वारा सम्पादित मासिक पत्र 'भारतेन्दु' का पुनर्प्रकाशन 1 अक्टूबर 1890. ई. से हुआ था। 'भारतेन्दु' 1 अक्टूबर 1890 ई. (पुस्तक 5 अंक 1) में पृष्ठ संख्या 2 पर 'भारतेन्दु का प्रेमालाप' शीर्षक सम्पादकीय में सम्पादक राधाचरण गोस्वामी ने कहा था ''भाषा कविता पर बड़ी विपत्ति आने वाली है। कुछ महाशय खड़ी हिन्दी का मुहम्मदी झण्डा लेकर खड़े हो गए हैं और कविता देवी का गला घोंटकर अकाल वध करना चाहते हैं जिससे कवि नाम ही उड़ जाए...'' अर्थात् खड़ी बोली कविता का विरोध करने के लिए उन्होंने 'भारतेन्दु' का पुनर्प्रकाशन किया था। किन्तु यह पत्र अपने पुनर्प्रकाशन के बावजूद अल्पजीवी ही सिद्ध हुआ। पण्डित श्रीधर पाठक खड़ी बोली गद्य के समर्थक

थे। गोस्वामी जी और पाठक जी में खड़ी बोली पद्य आन्दोलन के दौर में इसी बात पर मनोमालिन्य भी हुआ। 4 जनवरी 1905 ई. को खत्री जी का निधन हो गया था। सरस्वती और अन्य पत्रिकाओं में खड़ी बोली कविताओं का प्रकाशन शुरू हो गया था।

18 मई 1906 को गोस्वामी जी को लिखित अपने एक व्यक्तिगत पत्र में पण्डित श्रीधर पाठक ने कहा था- ''पुराने प्रेमियों को भूल जाना गुनाह में दाखिल है।'' पाठक जी की ओर से पारस्परिक मनोमालिन्य दूर करने की यह सार्थक चेष्टा थी। गोस्वामी जी ने अपने जीवनकाल में ही मैथिलीशरण गुप्त और छायावाद का उत्कर्ष देखा। उनका खड़ी बोली पद्य के प्रति विरोध दूर हो गया था। जनवरी 1910 ई. से 1920 ई. तक वृन्दावन से उन्होंने धार्मिक मासिक पत्र 'श्रीकृष्ण चैतन्य चन्द्रिका' का सम्पादन-प्रकाशन किया था। उक्त मासिक पत्र के प्रथमांक (जनवरी 1910 ई.) में स्वयं 'श्री विष्णुप्रिया का विलाप' शीर्षक कविता खड़ी बोली पद्य में लिखी थी।

गोस्वामी जी साहित्यकार ही नहीं, पत्रकार भी थे। उन्होंने वृन्दावन से भारतेन्दु मासिक पत्र का सम्पादन-प्रकाशन किया था जिसका प्रथमांक चैत्र शुक्ल 15, विक्रम संवत् 1940 तदनुसार 22 अप्रैल 1883 ई. को प्रकाशित हुआ। इसका प्रकाशन 3 वर्ष 5 माह तक हुआ। किन्तु व्यय अधिक होने से इसे बन्द कर देना पड़ा। 1910 ई. से 1920 ई. तक वृन्दावन से ही 'श्रीकृष्ण चैतन्य चन्द्रिका' नामक धार्मिक मासिक पत्रिका का सम्पादन-प्रकाशन उन्होंने किया था। गोस्वामी राधाचरण जी ने 'मेरा संक्षिप्त जीवन परिचय' (1895 ई.) शीर्षक अपनी संक्षिप्त आत्मकथा में लिखा था-

'लिखने के समय किसी ग्रन्थ की छाया लेकर लिखना मुझे पसन्द नहीं। जो कुछ अपने मन का विचार हो वही लिखता हूँ-

पण्डित बालकृष्ण भट्ट और हिन्दी प्रदीप ने पण्डित राधाचरण गोस्वामी को हिन्दी के साढ़े तीन लेखकों में से एक माना था। हिन्दी प्रदीप जनवरी-फरवरी मार्च 1894 ई. (जिल्द 17 संख्या 5, 6 और 7) ने कहा था कि हिन्दी के साढ़े तीन सुलेखक थे- बाबू हरिश्चन्द्र अर्थात् भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, ब्राह्मण मासिक पत्र के सम्पादक प्रतापनारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी, आधा पीयूष प्रवाह सम्पादक अम्बिकादत्त व्यास।

इस कथन से गोस्वामी जी की महत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है। देशोपकार उनके सम्पूर्ण लेखन का मूलमन्त्र था। विचारों की उग्रता और

प्रगतिशीलता में वे अपने युग के अन्य सभी लेखकों से बहुत आगे थे। वे एक क्रान्तिदर्शी साहित्यकार थे, प्रखर राष्ट्र-चिन्तक, साहित्य और समय की धारा को नया मोड़ देनेवाले युगद्रष्टा कथाकार भी। स्वाधीन चेतना, आत्मनिर्भरता, साहस, निर्भयता और आत्माभिमान उनके विशेष गुण थे। वे वस्तुतः भारतभक्त और हिन्दी साहित्य के एक गौरव स्तम्भ ही थे।

अम्बिकादत्त व्यास

अम्बिकादत्त व्यास (जन्म-1848 मृत्यु- 1900) ब्रजभाषा के कुशल और सरस कवि थे। ये 'भारतेन्दु युग' के कवि और लेखक थे। ये भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समकालीन तथा उनसे प्रभावित हिन्दी सेवी साहित्यकार थे। 12 वर्ष की अवस्था में 'काशी कविता वर्धिनी सभा' ने 'सुकवि' की उपाधि से इन्हें सम्मानित किया था।

प्रतिभा सम्पन्न

अम्बिकादत्त व्यास की प्रशंसा भारतेन्दु ने 'कविवचन सुधा' में भूरि-भूरि की है। ये विलक्षण प्रतिमा के धनी थे। इन्हें हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, बांग्ला, दर्शन, न्याय, वेदान्त में महारथ हासिल थी। अम्बिकादत्त व्यास ताश और शतरंज खेलने में अच्छे-अच्छों के छक्के छुड़ा देते थे। गाने-बजाने में उस्ताद थे। सितार और हारमोनियम भी अच्छा बजाते थे। जलतरंग सतरंग तक बजा डालते थे। यह सचमुच आश्चर्य जनक बात है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे बहुपठित आलोचक ने हिन्दी साहित्य में इनकी चर्चा क्यों नहीं की, यद्यपि इन्होंने गद्य और पद्य में 50 से अधिक पुस्तकें लिखी थीं।

रचना कार्य

व्यास जी का आश्चर्यजनक वृत्तांत अपने समय में 'फन्तासी' उपन्यास था।' 'शिवराज विजय' इनका महत्वपूर्ण संस्कृत उपन्यास है।

अम्बिकादत्त ने खड़ी बोली में तुकांत और अतुकांत दोनों प्रकार की कविताएँ लिखीं।

काशी से 'वैष्णव-पत्रिका' (1884 ई.) का आरम्भ इन्होंने किया था, जो बाद में 'पियूष-प्रवाह' नाम से साहित्यिक पत्रिका में रूपांतरित हो गयी।

कवित्त और सवैया शैली में इनकी ब्रजभाषा की अनेक रचनाएँ लोकप्रिय हुई।

'बिहारी बिहार' नामक ग्रन्थ में इन्होंने 'बिहारी सतसई' के आधार पर कुंडलियों की रचना की थी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से प्रेरणा लेकर अंबिकादत्त व्यास ने कुछ नाटकों की भी रचना की। इनकी विषय वस्तु कृष्णलीला और गो-रक्षा से सम्बन्धित है।

'अवतार मीमांसा' अम्बिकादत्त का प्रसिद्ध धार्मिक ग्रन्थ है।

प्रमुख रचनाएँ

'पावन पचासा' - अम्बिकादत्त की एक काव्यकृति है।

'बिहारी बिहार'

'चांद की रात'

3

पं महावीर प्रसाद द्विवेदी युग की कविता

सन् 1900 के बाद दो दशकों पर पं महावीर प्रसाद द्विवेदी का पूरा प्रभाव पड़ा। इस युग को इसीलिए द्विवेदी-युग कहते हैं। 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक के रूप में आप उस समय पूरे हिंदी साहित्य पर छाए रहे। आपकी प्रेरणा से ब्रज-भाषा हिंदी कविता से हटती गई और खड़ी बोली ने उसका स्थान ले लिया। भाषा को स्थिर, परिष्कृत एवं व्याकरण-सम्मत बनाने में आपने बहुत परिश्रम किया। कविता की दृष्टि से वह इतिवृत्तात्मक युग था। आदर्शवाद का बोलबाला रहा। भारत का उज्ज्वल अतीत, देश-भक्ति, सामाजिक सुधार, स्वभाषा-प्रेम वगैरह कविता के मुख्य विषय थे। नीतिवादी विचारधारा के कारण शृंगार का वर्णन मर्यादित हो गया। कथा-काव्य का विकास इस युग की विशेषता है। भाषा खुरदरी और सरल रही। मधुरता एवं सरलता के गुण अभी खड़ी-बोली में आ नहीं पाए थे। सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के यशस्वी कवि हैं। जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इसी युग में ब्रज भाषा में सरस रचनाएं प्रस्तुत कीं।

द्विवेदी युग की प्रवृत्तियाँ

1. राष्ट्रीय-भावना या राष्ट्र-प्रेम - इस समय भारत की राजनीति में एक महान परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रयत्न तेज और बलवान हो गए। भारतेंदु युग में जागृत राष्ट्रीय चेतना क्रियात्मक रूप धारण करने

लगी। उसका व्यापक प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा और कवि समाज राष्ट्र-प्रेम का वैतालिक बनकर राष्ट्र-प्रेम के गीत गाने लगा–

जय जय प्यारा भारत देश ... श्रीधर पाठक

संदेश नहीं मैं यहां स्वर्ग लाया

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ... मैथिलीशरण गुप्त

लोक-प्रचलित पौराणिक आख्यानों, इतिहास वृत्तों और देश की राजनीतिक घटनाओं में इन्होंने अपने काव्य की विषय वस्तु को सजाया। इन आख्यानों, वृत्तों और घटनाओं के चयन में उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति, देशानुराग और सत्ता के प्रति विद्रोह का स्वर मुखर है।

2. रूढ़ि-विद्रोह - पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव एवं जन जागृति के कारण इस काल के कवि में बौद्धिक जागरण हुआ और वह सांस्कृतिक भावनाओं के मूल सिद्धांतों को प्रकाशित कर बाहरी आडम्बरों का विरोध करने लगा। स्त्री-शिक्षा, बालविवाह, अनमेल विवाह, विधवा-विवाह, दहेज-प्रथा, अंधविश्वास आदि विषयों पर द्विवेदी युग के कवियों ने रचनाएं लिखी हैं। कवियों ने समाज की सर्वांग उन्नति को लक्ष्य बनाकर इन सभी विषयों पर अपने विचार व्यक्त किए हैं–

हे ईश, दयामय, इस देश को उबारो।

कुत्सित कुरीतियों के वश से इसे उबारो।

अनय राज निर्दय समाज से होकर जूझो। (मैथिलीशरण गुप्त)

इस युग के कवियों की धार्मिक चेतना भी उदार और व्यापक हुई। धार्मिक भावना केवल ईश्वर के गुण-गान तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसमें मानवता के आदर्शों की प्रतिष्ठा है। विश्व-प्रेम तथा जनसेवा की भावना इस युग की धार्मिक भावना का मुख्य अंग है। गोपाल शरण सिंह की कविता से एक उदाहरण देखिए-

जग की सेवा करना ही बस है सब सारों का सार।

विश्वप्रेम के बंधन ही में मुझको मिला मुक्ति का द्वार।

3. मानवतावाद– इस काल का कवि संकीर्णताओं से ऊपर उठ गया है। वह मानव-मानव में भ्रातृ-भाव की स्थापना करने के लिए कटिबद्ध है। अतः वह कहता है-

जैन बोद्ध पारसी यहूदी, मुस्लमान सिक्ख ईसाई।

कोटि कंठ से मिलकर कह दो हम हैं भाई-भाई।

मानवता का मूल्यांकन इस युग के कवियों की प्रखर बुद्धि ने ही किया। उनकी दृष्टि में-

मैं मानवता को सुरत्व की जननी भी कह सकता हूं
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।

4. शृंगार की जगह आदर्शवादिता – इस युग की कविता प्राचीन प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों से युक्त आदर्शवादी कविता है। इस युग के कवि की चेतना नैतिक आदर्शों को विशेष मान्यता दे रही थी, क्योंकि उन्होंने वीरगाथा काल तथा रीतिकाल की शृंगारिकता के दुष्परिणाम देखे थे। अत: वह इस प्रवृत्ति का उन्मूलन कर देश को वीर-धीर बनाना चाहता है-

रति के पति! तू प्रेतों से बढ़कर है संदेह नहीं,
जिसके सिर पर तू चढ़ता है उसको रुचता गेह नहीं।
मरघट उसको नंदन वन है, सुखद अंधेरी रात उसे
कुश कंटक हैं फूल सेज से, उत्सव है बरसात उसे। (रामचरित उपाध्याय)

इस काल का कवि सौंदर्य के प्रति उतना आकृष्ट नहीं, जितना कि वह शिव की ओर आकृष्ट है।

5. नारी का उत्थान - इस काल के कवियों ने नारी के महत्त्व को समझा, उस पर होने वाले अत्याचारों का विरोध किया और उसको जागृत करते हुए कहा -

आर्य जगत में पुन: जननि निज जीवन ज्योति जगाओ। (श्रीधर पाठक)

अब नारी भी लोक-हित की आराधना करने वाली बन गई। अत: प्रिय-प्रवास की राधा कहती है-

प्यारे जीवें जग-हित करें, गेह चाहे न आवै।

जहां कवियों ने नारी के दयनीय रूप देखें, वहां उसके दु:ख पर आंसू बहाते हुए कहा -

अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।
आचल में है दूध और अआंखों में पानी । (यशोधरा में मैथिलीशरण गुप्त)

6. प्रकृति-चित्रण – द्विवेदी युग के कवि का ध्यान प्रकृति के यथा-तथ्य चित्रण की ओर गया। प्रकृति चित्रण कवि के प्रकृति-प्रेम स्वरूप विविध रूपों में प्रकट हुआ। श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, हरिऔद्य तथा मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में प्रकृति आलंबन, मानवीकरण तथा उद्दीपन आदि रूपों में चित्रित

किया गया है। श्रीधर पाठक ने काश्मीर की सुषमा का रमणीय वर्णन करते हुए लिखा–

प्रकृति जहां एकांत बैठि निज रूप संवारति।
पल–पल पलटति भेष छनिक छवि छिन–छिन धारति।

आचार्य शुक्ल प्रकृति के विभिन्न अंगों के साथ मानवीय संबंध स्थापित करते हैं। रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक', 'स्वप्न' जैसे खंडकाव्यों में, हरिऔद्य के 'प्रियप्रवास' में, मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत','पंचवटी' आदि काव्यों में प्रकृति के विविध चित्र हैं। उपाध्याय जी व गुप्त जी आदि कवियों की काव्य–भूमि ही प्रकृति का स्वच्छंद प्रांगण है –

सुंदर सर है लहर मनोरथ सी उठ मिट जाती।
तट पर है कदम्ब की विस्तृत छाया सुखद सुहाती।

7. इतिवृत्तात्मकता– इतिवृत्तात्मकता का अर्थ है –वस्तु वर्णन या आख्यान की प्रधानता। आदर्शवाद और बौद्धिकता की प्रधानता के कारण द्विवेदी युग के कवियों ने वर्णन–प्रधान इतिवृत्तात्मकता को अपनाया। इस युग के अधिकांश कवि एक ओर तो प्राचीन ग्रंथों की महिमा, प्रेम की महिमा, मेघ के गुण–दोष, कुनैन, मच्छर, खटमल आदि शीर्षकों से वस्तु–वर्णन–प्रधान कविताओं को रच रहे थे और दूसरी ओर प्राचीन आख्यानों को नवीनता का पुट देकर उपस्थित किया जा रहा था, यद्यपि इस प्रकार की कुछ कविताएं मनोहारी हैं, हास्य–विनोदात्मक हैं, किंतु अधिकतर निरस हैं। इतिवृत्तात्मकता के कारण इस काव्य में नीरसता और शुष्कता है, कल्पना और अनुभूति की गहराई कम है, रसात्मकता एवं कोमल कांत पदावली का उसमें अभाव है।

8. स्वच्छंदतावाद – प्राचीन रूढ़ियों को तोड़कर नई शैलियों में नए काव्य विषयों को लेकर साहित्य–सर्जना की प्रवृत्ति को स्वच्छंदता कहा जाता है। हिंदी में स्वच्छंदतावादी काव्य का पूर्ण विकास छायावादी युग में हुआ। परंतु द्विवेदी युग में श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियां देखी जा सकती हैं। प्रकृति–चित्रण और नए विषयों को अपनाने के कारण रामचंद्र शुक्ल ने श्रीधर पाठक को हिंदी का पहला स्वच्छंदतावादी कवि कहा है।

9. भाषा संस्कार–द्विवेदी जी के प्रयासों के परिणामस्वरूप इस समय में साहित्य के समस्त रूपों में खड़ी बोली का एकछत्र राज्य स्थापित हो गया। उसका रूखापन जाता रहा, उसमें एकरूपता स्थापित हो गई और वह अपने शुद्ध रूप में प्रकट हुई। श्री हरदेव बाहरी के शब्दों में – 'मैथिलीशरण गुप्त ने भाषा को लाक्षणिकता प्रदान

की, ठाकुर गोपालशरण सिंह ने प्रवाह दिया, स्नेही ने उसे प्रभावशालिनी बनाया और रूपनारायण पांडेय, मनन द्विवेदी, रामचरित उपाध्याय आदि ने उसका परिष्कार तथा प्रचार करके आधुनिक हिंदी काव्य को सुदृढ़ किया।'

10. काव्य रूप में विविधता– इस युग में प्रबंध और मुक्तक, दोनों ही रूपों में काव्य रचनाएं हुई। प्रबंध रचना के क्षेत्र में इस युग के कवियों को अति सफलता मिली। 'प्रिय-प्रवास', 'वैदही-बनवास', 'साकेत', तथा 'राचरित-चिंतामणि' इस काल के प्रसिद्ध महा काव्य हैं। 'जयद्रथ-वध', 'पंचवटी', 'पथिक', 'स्वप्न' आदि प्रमुख खंडकाव्य हैं। मुक्तक और गीत भी लिखे गए,परंतु अधिक सफलता प्रबंध काव्य प्रणयन में ही मिली।

11. विविध छंद–इस काल-खंड में विविध छंदों को अपनाने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है, फिर भी पुराने छंदों और मात्रा-छंदों की ही प्रधानता रही। श्रीधर पाठक ने कुछ नए छंदों तथा मुक्त-छंदों का भी प्रयोग किया।

12. शैली–शैली की दृष्टि से इस युग का काव्य विविधमुखी है। गोपालशरण सिंह आदि पुराने ढ़ंग के और नई शैली के मुक्तक लिख रहे थे तथा उपाध्याय एवं गुप्त जी प्रबंध शैली को महत्त्व दे रहे थे। गीति-शैली के काव्यों का सृजन भी होने लगा था। काव्य के कलेवर के निर्माण में स्वच्छंदता से काम लिया गया।

13.अनुवाद कार्य–इन सबके अतिरिक्त अंग्रेजी और बंगला से अनुवाद करने की प्रवृत्ति, भक्तिवाद की ओर झुकाव आदि अन्य नाना गौण प्रवृत्तियां भी इसी काल में देखी जाने लगी थीं।

महावीर प्रसाद द्विवेदी

महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म उत्तर प्रदेश के (बैसवारा) रायबरेली जिले के दौलतपुर गाँव में 15 मई 1864 को हुआ था। इनके पिता का नाम पं. रामसहाय दुबे था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। धनाभाव के कारण इनकी शिक्षा का क्रम अधिक समय तक न चल सका। इन्हें जी आई पी रेलवे में नौकरी मिल गई। 25 वर्ष की आयु में रेल विभाग अजमेर में 1 वर्ष का प्रवास। नौकरी छोड़कर पिता के पास मुंबई प्रस्थान एवं टेलीग्राफ का काम सीखकर इंडियन मिडलैंड रेलवे में तार बाबू के रूप में नियुक्ति। अपने उच्चाधिकारी से न पटने और स्वाभिमानी स्वभाव के कारण 1904 में झाँसी में रेल विभाग की 200 रुपये मासिक वेतन की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया।

नौकरी के साथ-साथ द्विवेदी अध्ययन में भी जुटे रहे और हिंदी के अतिरिक्त मराठी, गुजराती, संस्कृत आदि का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

सन् 1903 में द्विवेदी जी ने सरस्वती मासिक पत्रिका के संपादन का कार्यभार सँभाला और उसे सत्रह वर्ष तक कुशलतापूर्वक निभाया। 1904 में नौकरी से त्यागपत्र देने के पश्चात स्थायी रूप से 'सरस्वती' के संपादन कार्य में लग गये। 200 रूपये मासिक की नौकरी को त्यागकर मात्र 20 रूपये प्रतिमास पर सरस्वती के सम्पादक के रूप में कार्य करना उनके त्याग का परिचायक है। संपादन-कार्य से अवकाश प्राप्त कर द्विवेदी जी अपने गाँव चले आए। अत्यधिक रुग्ण होने से 21 दिसम्बर 1938 को रायबरेली में इनका स्वर्गवास हो गया।

प्रकाशित कृतियाँ

महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी के पहले लेखक थे, जिन्होंने केवल अपनी जातीय परंपरा का गहन अध्ययन ही नहीं किया था, बल्कि उसे आलोचकीय दृष्टि से भी देखा था। उन्होंने अनेक विधाओं में रचना की। कविता, कहानी, आलोचना, पुस्तक समीक्षा, अनुवाद, जीवनी आदि विधाओं के साथ उन्होंने अर्थशास्त्र, विज्ञान, इतिहास आदि अन्य अनुशासनों में न सिर्फ विपुल मात्रा में लिखा, बल्कि अन्य लेखकों को भी इस दिशा में लेखन के लिए प्रेरित किया। द्विवेदी जी केवल कविता, कहानी, आलोचना आदि को ही साहित्य मानने के विरुद्ध थे। वे अर्थशास्त्र, इतिहास, पुरातत्व, समाजशास्त्र आदि विषयों को भी साहित्य के ही दायरे में रखते थे। वस्तुतः स्वाधीनता, स्वदेशी और स्वावलंबन को गति देने वाले ज्ञान-विज्ञान के तमाम आधारों को वे आंदोलित करना चाहते थे। इस कार्य के लिये उन्होंने सिर्फ उपदेश नहीं दिया, बल्कि मनसा, वाचा, कर्मणा स्वयं लिखकर दिखाया।

उन्होंने वेदों से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के संस्कृत-साहित्य की निरंतर प्रवाहमान धारा का अवगाहन किया था एवं उपयोगिता तथा कलात्मक योगदान के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टि अपनायी थी। उन्होंने श्रीहर्ष के संस्कृत महाकाव्य नैषधीयचरितम् पर अपनी पहली आलोचना पुस्तक 'नैषधचरित चर्चा' नाम से लिखी (1899), जो संस्कृत-साहित्य पर हिन्दी में पहली आलोचना-पुस्तक भी है। फिर उन्होंने लगातार संस्कृत-साहित्य का अन्वेषण, विवेचन और मूल्यांकन किया। उन्होंने संस्कृत के कुछ महाकाव्यों के हिन्दी में औपन्यासिक

रूपांतर भी किये, जिनमें कालिदास कृत रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, किरातार्जुनीय प्रमुख हैं।

संस्कृत, ब्रजभाषा और खड़ी बोली में स्फुट काव्य-रचना से साहित्य-साधना का आरंभ करने वाले महावीर प्रसाद द्विवेदी ने संस्कृत और अंग्रेजी से क्रमशः ब्रजभाषा और हिन्दी में अनुवाद-कार्य के अलावा प्रभूत समालोचनात्मक लेखन किया। उनकी मौलिक पुस्तकों में नाट्यशास्त्र (1904 ई.), विक्रमांकदेव चरितचर्या (1907 ई.), हिन्दी भाषा की उत्पत्ति (1907 ई.) और संपत्तिशास्त्र (1907 ई.) प्रमुख हैं तथा अनूदित पुस्तकों में शिक्षा (हर्बर्ट स्पेंसर के 'एजुकेशन' का अनुवाद, 1906 ई.) और स्वाधीनता (जान, स्टुअर्ट मिल के 'ऑन लिबर्टी' का अनुवाद, 1907 ई.)।

द्विवेदी जी ने विस्तृत रूप में साहित्य रचना की। इनके छोटे-बड़े ग्रंथों की संख्या कुल मिलाकर 81 है। पद्य के मौलिक-ग्रंथों में काव्य-मंजूषा, कविता कलाप, देवी-स्तुति, शतक आदि प्रमुख है। गंगालहरी, ऋतु तरंगिणी, कुमार संभव सार आदि इनके अनूदित पद्य-ग्रंथ हैं।

गद्य के मौलिक ग्रंथों में तरुणोपदेश, नैषध चरित्र चर्चा, हिंदी कालिदास की समालोचना, नाट्य शास्त्र, हिंदी भाषा की उत्पत्ति, कालीदास की निरंकुशता आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अनुवादों में वेकन विचार, रत्नावली, हिंदी महाभारत, वेणी संसार आदि प्रमुख हैं।

मौलिक पद्य रचनाएँ

1 देवी स्तुति-शतक (1892 ई.),
2 कान्यकुब्जावलीव्रतम (1898 ई.),
3 समाचार पत्र सम्पादन स्तवः (1898 ई.),
4 नागरी (1900 ई.),
5 कान्यकुब्ज-अबला-विलाप (1907 ई.),
6 काव्य मंजूषा (1903 ई.),
7 सुमन (1923 ई.),
8 द्विवेदी काव्य-माला (1940 ई.),
9 कविता कलाप (1909 ई.),
10 पद्य (अनूदित),

11 विनय विनोद (1889 ई.)- भर्तृहरि के 'वैराग्यशतक' का दोहों में अनुवाद,
12 विहार वाटिका (1890 ई.)- गीत गोविन्द का भावानुवाद,
13 स्नेह माला (1890 ई.)- भर्तृहरि के 'शृंगार शतक' का दोहों में अनुवाद,
14 श्री महिम्न स्तोत्र (1891 ई.)- संस्कृत के 'महिम्न स्तोत्र' का संस्कृत वृत्तों में अनुवाद,
15 गंगा लहरी (1891 ई.)- पण्डितराज जगन्नाथ की 'गंगालहरी' का सवैयों में अनुवाद।
16 ऋतुतरंगिणी (1891 ई.)- कालिदास के 'ऋतुसंहार' का छायानुवाद
17 सोहागरात (अप्रकाशित)- बाइरन के 'ब्राइडल नाइट' का छायानुवाद
18 कुमारसम्भवसार (1902 ई.)- कालिदास के 'कुमारसम्भवम' के प्रथम पाँच सर्गों का सारांश

मौलिक गद्य रचनाएँ

1. नैषध चरित्र चर्चा (1899 ई.),
2. तरुणोपदेश (अप्रकाशित),
3. हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना (1901 ई.),
4. वैज्ञानिक कोश (1906 ई.),
5. नाट्यशास्त्र (1912 ई.),
6. विक्रमांकदेवचरितचर्चा (1907 ई.),
7. हिन्दी भाषा की उत्पत्ति (1907 ई.),
8. सम्पत्ति-शास्त्र (1907 ई.),
9. कौटिल्य कुठार (1907 ई.),
10. कालिदास की निरकुंशता (1912 ई.),
11. वनिता-विलाप (1918 ई.),
12. औद्यागिकी (1920 ई.),
13. रसज्ञ रंजन (1920 ई.),
14. कालिदास और उनकी कविता (1920 ई.),
15. सुकवि संकीर्तन (1924 ई.),
16. अतीत स्मृति (1924 ई.),
17. साहित्य सन्दर्भ (1928 ई.),

18. अदभुत आलाप (1924 ई.),
19. महिलामोद (1925 ई.),
20. आध्यात्मिकी (1928 ई.),
21. वैचित्र्य चित्रण (1926 ई.),
22. साहित्यालाप (1926 ई.),
23. विज्ञ विनोद (1926 ई.),
24. कोविद कीर्तन (1928 ई.),
25. विदेशी विद्वान (1928 ई.),
26. प्राचीन चिह्न (1929 ई.),
27. चरित चर्या (1930 ई.),
28. पुरावृत्त (1933 ई.),
29. दृश्य दर्शन (1928 ई.),
30. आलोचनांजलि (1928 ई.),
31. चरित्र चित्रण (1929 ई.),
32. पुरातत्त्व प्रसंग (1929 ई.),
33. साहित्य सीकर (1930 ई.),
34. विज्ञान वार्ता (1930 ई.),
35. वाग्विलास (1930 ई.),
36. संकलन (1931ई.),
37. विचार-विमर्श (1931,ई.),
38. गद्य (अनूदित),
39. भामिनी-विलास (1891 ई.)- पण्डितराज जगन्नाथ के 'भामिनी विलास' का अनुवाद,
40. अमृत लहरी (1896 ई.)- पण्डितराज जगन्नाथ के 'यमुना स्तोत्र' का भावानुवाद,
41. बेकन-विचार-रत्नावली (1901ई.)- बेकन के प्रसिद्ध निबन्धों का अनुवाद,
42. शिक्षा (1906 ई.)- हर्बर्ट स्पेंसर के 'एजुकेशन' का अनुवाद,
43. स्वाधीनता (1907 ई.)- जॉन स्टुअर्ट मिल के 'ऑन लिबर्टी' का अनुवाद,

44. जल चिकित्सा (1907 ई.)- जर्मन लेखक लुई कोने की जर्मन पुस्तक के अंग्रेजी अनुवाद का अनुवाद,
45. हिन्दी महाभारत (1908 ई.)-'महाभारत' की कथा का हिन्दी रूपान्तर,
46. रघुवंश (1912 ई.)- कालिदास के 'रघुवंशम्' महाकाव्य का भाषानुवाद,
47. वेणी-संहार (1913 ई.)- संस्कृत कवि भट्टनारायण के 'वेणीसंहार' नाटक का अनुवाद,
48. कुमार सम्भव (1915 ई.)- कालिदास के 'कुमार सम्भव' का अनुवाद,
49. मेघदूत (1917 ई.)- कालिदास के 'मेघदूत' का अनुवाद,
50. किरातार्जुनीय (1917 ई.)- भारवि के 'किरातार्जुनीयम्' का अनुवाद,
51. प्राचीन पण्डित और कवि (1918 ई.)- अन्य भाषाओं के लेखों के आधार पर प्राचीन कवियों और पण्डितों का परिचय,
52. आख्यायिका सप्तक (1927 ई.)- अन्य भाषाओं की चुनी हुई सात आख्यायिकाओं का छायानुवाद।

वर्ण्य विषय

हिंदी भाषा के प्रसार, पाठकों के रुचि परिष्कार और ज्ञानवर्धन के लिए द्विवेदी जी ने विविध विषयों पर अनेक निबंध लिखे। विषय की दृष्टि से द्विवेदी जी के निबंध आठ भागों में विभाजित किए जा सकते हैं - साहित्य, जीवन चरित्र, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, उद्योग, शिल्प भाषा, अध्यात्म। द्विवेदी जी ने आलोचनात्मक निबंधों की भी रचना की। उन्होंने आलोचना के क्षेत्र में संस्कृत टीकाकारों की भांति कृतियों का गुण-दोष विवेचन किया और खंडन-मंडन की शास्त्रार्थ पद्धति को अपनाया है।

भाषा

द्विवेदी जी सरल और सुबोध भाषा लिखने के पक्षपाती थे। उन्होंने स्वयं सरल और प्रचलित भाषा को अपनाया। उनकी भाषा में न तो संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता है और न उर्दू-फारसी के अप्रचलित शब्दों की भरमार है वे गृह के स्थान पर घर और उच्च के स्थान पर ऊँचा लिखना अधिक पसंद करते थे। द्विवेदी जी ने अपनी भाषा में उर्दू और फारसी के शब्दों का निस्संकोच प्रयोग किया, किंतु इस प्रयोग में उन्होंने केवल प्रचलित शब्दों को ही अपनाया। द्विवेदी जी की भाषा का रूप पूर्णतः स्थित है। वह शुद्ध परिष्कृत और व्याकरण के

नियमों से बंधी हुई है। उनका वाक्य-विन्यास हिंदी को प्रकृति के अनुरूप है कहीं भी वह अंग्रेजी या उर्दू के ढंग का नहीं।

शैली

द्विवेदी जी की शैली के मुख्यत: तीन रूप दृष्टिगत होते हैं-

परिचयात्मक शैली

द्विवेदी जी ने नये-नये विषयों पर लेखनी चलाई। विषय नये और प्रारंभिक होने के कारण द्विवेदी जी ने उनका परिचय सरल और सुबोध शैली में कराया। ऐसे विषयों पर लेख लिखते समय द्विवेदी जी ने एक शिक्षक की भांति एक बात को कई बार दुहराया है ताकि पाठकों की समझ में वह भली प्रकार आ जाए। इस प्रकार लेखों की शैली परिचयात्मक शैली है।

आलोचनात्मक शैली

हिंदी भाषा के प्रचलित दोषों को दूर करने के लिए द्विवेदी जी इस शैली में लिखते थे। इस शैली में लिखकर उन्होंने विरोधियों को मुंह-तोड़ उत्तर दिया। यह शैली ओजपूर्ण है। इसमें प्रवाह है और इसकी भाषा गंभीर है। कहीं-कहीं यह शैली ओजपूर्ण न होकर व्यंग्यात्मक हो जाती है। ऐसे स्थलों पर शब्दों में चुलबुलाहट और वाक्यों में सरलता रहती है। 'इस म्यूनिसिपाल्टी के चेयरमैन (जिसे अब कुछ लोग कुर्सी मैन भी कहने लगे हैं) श्रीमान बूचा शाह हैं। बाप दादे की कमाई का लाखों रुपया आपके घर भरा है। पढ़े-लिखे आप राम का नाम हैं। चेयरमैन आप सिर्फ इसलिए हुए हैं कि अपनी कार गुजारी गवर्नमेंट को दिखाकर आप राय बहादुर बन जाएं और खुशामदियों से आठ पहर चौंसठ घर-घिरे रहें।'

विचारात्मक अथवा गवेषणात्मक शैली

गंभीर साहित्यिक विषयों के विवेचन में द्विवेदी जी ने इस शैली को अपनाया है। इस शैली के भी दो रूप मिलते हैं। पहला रूप उन लेखों में मिलता है जो किसी विवादग्रस्त विषय को लेकर जनसाधारण को समझाने के लिए लिखे गए हैं। इसमें वाक्य छोटे-छोटे हैं। भाषा सरल है। दूसरा रूप उन लेखों में

पाया जाता है जो विद्वानों को संबोधित कर लिखे गए हैं। इसमें वाक्य अपेक्षाकृत लंबे हैं। भाषा कुछ क्लिष्ट है। उदाहरण के लिए –

अप्समार और विक्षिप्तता मानसिक विकार या रोग है। उसका संबंध केवल मन और मस्तिष्क से है। प्रतिभा भी एक प्रकार का मनोविकार ही है। इन विकारों की परस्पर इतनी संलग्नता है कि प्रतिभा को अप्समार और विक्षिप्तता से अलग करना और प्रत्येक परिणाम समझ लेना बहुत ही कठिन है।

महत्त्वपूर्ण कार्य

हिंदी साहित्य की सेवा करने वालों में द्विवेदी जी का विशेष स्थान है। द्विवेदी जी की अनुपम साहित्य-सेवाओं के कारण ही उनके समय को द्विवेदी युग के नाम से पुकारा जाता है।

भारतेंदु युग में लेखकों की दृष्टि की शुद्धता की ओर नहीं रही। भाषा में व्याकरण के नियमों तथा विराम-चिह्नों आदि की कोई परवाह नहीं की जाती थी। भाषा में आशा किया, इच्छा किया जैसे प्रयोग दिखाई पड़ते थे। द्विवेदी जी ने भाषा के इस स्वरूप को देखा और शुद्ध करने का संकल्प किया। उन्होंने इन अशुद्धियों की ओर आकर्षित किया और लेखकों को शुद्ध तथा परिमार्जित भाषा लिखने की प्रेरणा दी।

द्विवेदी जी ने खड़ी बोली को कविता के लिए विकास का कार्य किया। उन्होंने स्वयं भी खड़ी बोली में कविताएं लिखीं और अन्य कवियों को भी उत्साहित किया। श्री मैथिली शरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय जैसे खड़ी बोली के श्रेष्ठ कवि उन्हीं के प्रयत्नों के परिणाम हैं।

द्विवेदी जी ने नये-नये विषयों से हिंदी साहित्य को संपन्न बनाया। उन्हीं के प्रयासों से हिंदी में अन्य भाषाओं के ग्रंथों के अनुवाद हुए तथा हिंदी-संस्कृत के कवियों पर आलोचनात्मक निबंध लिखे गए।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (15 अप्रैल, 1865-16 मार्च, 1947) हिन्दी के एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार थे। वे 2 बार हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति रह चुके हैं और सम्मेलन द्वारा विद्यावाचस्पति की उपाधि से सम्मानित किये जा चुके हैं। प्रिय प्रवास हरिऔध जी का सबसे प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह हिंदी खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है और इसे मंगलाप्रसाद पारितोषिक पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

जीवनवृत

हरिऔध जी का जन्म उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के निजामाबाद नामक स्थान में हुआ। उनके पिता का नाम पंडित भोलानाथ उपाध्याय था। प्रारंभिक शिक्षा निजामाबाद एवं आजमगढ़ में हुई। पांच वर्ष की अवस्था में इनके चाचा ने इन्हें फारसी पढ़ाना शुरू कर दिया था।

हरिऔध जी निजामाबाद से मिडिल परीक्षा पास करने के पश्चात काशी के क्वींस कालेज में अंग्रेजी पढ़ने के लिए गए, किंतु स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण उन्हें कॉलेज छोड़ना पड़ा। उन्होंने घर पर ही रह कर संस्कृत, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी आदि का अध्ययन किया और 1884 में निजामाबाद में इनका विवाह निर्मला कुमारी के साथ संपन्न हुआ।

सन 1889 में हरिऔध जी को सरकारी नौकरी मिल गई। वे कानूनगो हो गए। इस पद से सन 1932 में अवकाश ग्रहण करने के बाद हरिऔध जी ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में अवैतनिक शिक्षक के रूप से कई वर्षों तक अध्यापन कार्य किया। सन 1941 तक वे इसी पद पर कार्य करते रहे। उसके बाद यह निजामाबाद वापस चले आए। इस अध्यापन कार्य से मुक्त होने के बाद हरिऔध जी अपने गाँव में रह कर ही साहित्य-सेवा कार्य करते रहे। अपनी साहित्य-सेवा के कारण हरिऔध जी ने काफी ख्याति अर्जित की। हिंदी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें एक बार सम्मेलन का सभापति बनाया और विद्यावाचस्पति की उपाधि से सम्मानित किया। सन् 1947 ई. में निजामाबाद में इनका देहावसान हो गया।

रचनाएँ

हरिऔध जी ने ठेठ हिंदी का ठाठ, अधखिला फूल, हिंदी भाषा और साहित्य का विकास आदि ग्रंथ-ग्रंथों की भी रचना की, किंतु मूलतः वे कवि ही थे उनके उल्लेखनीय ग्रंथों में शामिल हैं–

प्रिय प्रवास 1914 ई.
कवि सम्राट
वैदेही वनवास 1940 ई.
पारिजात 1937 ई.
रस-कलश 1940 ई.
चुभते चौपदे 1932 ई., चौखे चौपदे 1924 ई.

ठेठ हिंदी का ठाठ
अधखिला फूल
रुक्मिणी परिणय
हिंदी भाषा और साहित्य का विकास
बाल साहित्य
बाल विभव
बाल विलास
फूल पत्ते
चन्द्र खिलौना
खेल तमाशा
उपदेश कुसुम
बाल गीतावली
चाँद सितारे
पद्य प्रसून

प्रिय प्रवास, हरिऔध जी का सबसे प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह हिंदी खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। इसे मंगलाप्रसाद पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

काव्यगत विशेषताएँ

वर्ण्य विषय- हरिऔध जी ने विविध विषयों पर काव्य रचना की है। यह उनकी विशेषता है कि उन्होंने कृष्ण-राधा, राम-सीता से संबंधित विषयों के साथ-साथ आधुनिक समस्याओं को भी लिया है और उन पर नवीन ढंग से अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। प्राचीन और आधुनिक भावों के मिश्रण से उनके काव्य में एक अद्‌भुत चमत्कार उत्पन्न हो गया है।

वियोग तथा वात्सल्य-वर्णन- प्रिय प्रवास में कृष्ण के मथुरा गमन तथा उसके बाद ब्रज की दशा का मार्मिक वर्णन है। कृष्ण के वियोग में सारा ब्रज दु:खी है। राधा की स्थिति तो अकथनीय है। नंद यशोदा आदि बड़े व्याकुल हैं। पुत्र-वियोग में व्यथित यशोदा का करुण चित्र हरिऔध ने खींचा है, यह पाठक के हृदय को द्रवीभूत कर देता है-

प्रिय प्रति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है?
दु:ख जल निधि डूबी का सहारा कहाँ है?

लख मुख जिसका मैं आजलौं जी सकी हूँ।
वह हृदय हमारा नैन तारा कहाँ है?

लोक-सेवा की भावना- हरिऔध जी ने कृष्ण को ईश्वर रूप में न दिखा कर आदर्श मानव और लोक-सेवक के रूप में चित्रित किया है। उन्होंने स्वयं कृष्ण के मुख से कहलवाया है-

विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का,
सहाय होना असहाय जीव का।
उबारना संकट से स्वजाति का,
मनुष्य का सर्व प्रधान धर्म है।

कृष्ण के अनुरूप ही राधा का चरित्र है। वे दोनों की भगिनी अनाश्रितों की माँ और विश्व की प्रेमिका हैं। अपने प्रियतम कृष्ण के वियोग का दु:ख सह कर भी वे लोक-हित की कामना करती हैं- प्यारे जीवें जग-हित करें, गेह चाहे न आवें।

प्रकृति-चित्रण- हरिऔध जी का प्रकृति चित्रण सराहनीय है। अपने काव्य में उन्हें जहाँ भी अवसर मिला है, उन्होंने प्रकृति का चित्रण किया है और उसे विविध रूपों में अपनाया है। हरिऔध जी का प्रकृति-चित्रण सजीव और परिस्थितियों के अनुकूल है। संबंधित प्राणियों के सुख में प्रकृति सुखी और दु:ख में दु:खी दिखाई देती है। कृष्ण के वियोग में ब्रज के वृक्ष भी रोते हैं-

फूलों-पत्तों सकल पर हैं वादि-बूँदें लखातीं, रोते हैं या विपट सब यों आँसुओं की दिखा के।

जहाँ हरिऔध जी ने वृक्षों आदि को गिनाने का प्रयत्न किया है, वहाँ उनका प्रकृति-वर्णन कुछ नीरस क्षौर परंपरागत-सा लगता है, किंतु ऐसा बहुत कम हुआ है। अधिकतर उनका प्रकृति चित्रण सरल और स्वाभाविक और हृदयग्राही है।- संध्या का एक सुंदर दृश्य देखिए-

दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु शिखा पर थी जब राजती,
कमलिनी-कुल-वल्लभ का प्रभा।

भाषा

हरिऔध जी ने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में ही कविता की है, किंतु उनकी अधिकांश रचनाएँ खड़ी बोली में ही हैं।

हरिऔध की भाषा प्रौढ़, प्रांजल और आकर्षक है। कहीं-कहीं उसमें उर्दू-फारसी के भी शब्द आ गए हैं। नवीन और अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का तो इतनी अधिकता है कि कहीं-कहीं उनकी कविता हिंदी की न होकर संस्कृत की सी ही प्रतीत होने लगती है। राधा का रूप-वर्णन करते समय देखिए-

रूपोद्याम प्रफुल्ल प्रायः कलिका राकेंदु-बिंबानना,
तन्वंगी कल-हासिनी सुरसि का क्रीड़ा-कला पुत्तली।
शोभा-वारिधि की अमूल्य मणि-सी लावण्य लीलामयी,
श्री राधा-मृदु भाषिणा मृगदगी-माधुर्य की मूर्ति थी।

भाषा पर हरिऔध जी का अद्‌भुत अधिकार प्राप्त था। एक ओर जहाँ उन्होंने संस्कृत-गर्भित उच्च साहित्यिक भाषा में कविता लिखी वहाँ दूसरी ओर उन्होंने सरल तथा मुहावरेदार व्यावहारिक भाषा को भी सफलतापूर्वक अपनाया। उनके चौपदों की भाषा इसी प्रकार की है। एक उदाहरण लीजिए-

नहीं मिलते आँखों वाले, पड़ा अंधेरे से है पाला।
कलेजा किसने कब थामा, देख छिलते दिल का छाला।।

शैली

हरिऔध जी ने विविध शैलियों को ग्रहण किया है। मुख्य रूप से उनके काव्य में निम्नलिखित शैलियाँ पाई जाती हैं-

1. संस्कृत-काव्य शैली- प्रिय प्रवास में।
2. रीतिकालीन अलंकरण शैली- रस कलश में।
3. आधुनिक युग की सरल हिंदी शैली- वैदेही-वनवास में।
4. उर्दू की मुहावरेदार शैली- चुभते चौपदों और चोखे चौपदों में।

रस-छंद-अलंकार

हरिऔध जी के काव्य में प्रायः संपूर्ण रस पाए जाते हैं, रुणा वियोग, शृंगार और वात्सल्य रस की पूर्णरूप से व्यंजना। हरिऔध जी की छंद-योजना में पर्याप्त विविधता मिलती है। आरंभ में उन्होंने हिंदी के प्राचीन छंद कवित्त सबैया, छप्पय, दोहा आदि तथा उर्दू के छंदों का प्रयोग किया। बाद में उन्होंने इंद्रवज्रा, शिखरिणी, मालिनी वसंत तिलका, शार्दूल, विक्रीड़ित मंदाक्रांता आदि संस्कृत के छंदों को भी अपनाया।

अलंकार- रीतिकालीन प्रभाव के कारण हरिऔध जी अलंकार प्रिय है, किंतु उनकी कविता-कामिनी अलंकारों से बोझिल नहीं है। उनकी कविता में जो भी अलंकार हैं, वे सहज रूप में आ गए हैं और रस की अभिव्यक्ति में सहायक सिद्ध हुए हैं। हरिऔध जी ने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही को सफलता पूर्वक प्रयोग किया है। अनुप्रास, यमक, उपमा उत्प्रेक्षा, रूपक उनके प्रिय अलंकार हैं।

विरासत

हरिऔध जी ने गद्य और पद्य दोनों ही क्षेत्रों में हिंदी की सेवा की। वे द्विवेदी युग के प्रमुख कवि है। उन्होंने सर्वप्रथम खड़ी बोली में काव्य-रचना करके यह सिद्ध कर दिया कि उसमें भी ब्रजभाषा के समान खड़ी बोली की कविता में भी सरसता और मधुरता आ सकती है। हरिऔध जी में एक श्रेष्ठ कवि के समस्त गुण विद्यमान थे। 'उनका प्रिय प्रवास' महाकाव्य अपनी काव्यगत विशेषताओं के कारण हिंदी महाकाव्यों में 'माइल-स्टोन' माना जाता है। श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के शब्दों में हरिऔध जी का महत्व और अधिक स्पष्ट हो जाता है- 'इनकी यह एक सबसे बड़ी विशेषता है कि ये हिंदी के सार्वभौम कवि हैं। खड़ी बोली, उर्दू के मुहावरे, ब्रजभाषा, कठिन-सरल सब प्रकार की कविता की रचना कर सकते हैं।

जगन्नाथदास रत्नाकर

जगन्नाथदास रत्नाकर (1866 - 21 जून 1932) आधुनिक युग के श्रेष्ठ ब्रजभाषा कवि थे।

परिचय

इनका जन्म सं. 1923 (सन् 1866 ई.) के भाद्रपद शुक्ल पंचमी के दिन हुआ था। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की भी यही जन्मतिथि थी और वे रत्नाकर जी से 16 वर्ष बड़े थे। उनके पिता का नाम पुरुषोत्तमदास और पितामह का नाम संगमलाल अग्रवाल था जो काशी के धनीमानी व्यक्ति थे। रत्नाकर जी की प्रारंभिक शिक्षा फारसी में हुई। उसके पश्चात् इन्होंने 12 वर्ष की अवस्था में अंग्रेजी पढ़ना प्रारंभ किया और यह प्रतिभाशाली विद्यार्थी सिद्ध हुए। सन 1888 ई. में इन्होंने करना चाहा था, पर पारिवारिक परिस्थितिवश न

कर पाए। ये पहले 'जकी' उपमान से फारसी में रचना करते थे। इनके हिंदी काव्यगुरु सरदार कवि थे। ये मथुरा के प्रसिद्ध कवि 'नवनीत' चतुर्वेदी से भी बड़े प्रभावित हुए थे।

रत्नाकर जी ने अपनी आजीविका के हेतु 30-32 वर्ष की अवस्था में जरदेजी का काम आरंभ किया था। उसके उपरांत ये आवागढ़ रियासत में कोषाध्यक्ष के पद पर नियुक्त हुए। भारतेंदु जी के संपर्क और काशी की कविगोष्ठियों के प्रभाव से इन्होंने 1889 ई. में ब्रजभाषा में रचना करना आरंभ किया। रत्नाकर जी की सर्वप्रथम काव्यकृति 'हिंडोला' सन् 1894 ई. में प्रकाशित हुई। सन् 1893 में 'साहित्य सुधा निधि' नामक मासिक पत्र का संपादन प्रारंभ किया तथा अनेक ग्रंथों का संपादन भी किया जिनमें दूलह कवि कृत कंठाभरण, कृपारामकृत 'हिततरंगिणी', चंद्रशेखरकृत 'नखशिख' हैं। नागरीप्रचारिणी सभा के कार्यों में रत्नाकर जी का पूरा सहयोग रहता था। सन् 1897 में रत्नाकर जी ने 'घनाक्षरी नियम रत्नाकर' प्रकाशित कराया और 1898 में 'समालोचनादर्श' (पोप के 'एस्से ऑन क्रिटिसिज्म' का अनुवाद) प्रकाशित हुआ।

सन् 1902 के उपरांत ये अयोध्यानरेश राजा प्रतापनारायण सिंह के यहाँ प्राइवेट सेक्रेटरी (निजी सचिव) के रूप में काम करते रहे और अंतिम समय तक इनका संबंध अयोध्या दरबार से रहा। इस बीच इन्होंने 'बिहारी रत्नाकर' नाम से बिहारी सतसई का संपादन किया। 14 मई सन् 1921 ई. से अयोध्या की महारानी की प्रेरणा से इन्होंने 'गंगावतरण' काव्य की रचना प्रारंभ की, जो सन् 1923 में समाप्त हुई। इसी समय 'उद्धवशतक' का भी रचनाकार्य चलता रहा। हरिद्वार यात्र में एक बार इनकी पेटी खो गई जिससे 'उद्धव शतक' के सौ सवा सौ छंद चोरी चले गए। पर रत्नाकर जी ने अपनी स्मृति से उन्हें फिर लिख डाला। 'उद्धव शतक' इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। ये सन् 1926 में औरियंटल कांफरेंस के हिंदी विभाग के सभापति हुए और सन् 1930 में हिंदी साहित्य सम्मेलन के बीसवें अधिवेशन के सभापति चुने गए। इस अधिवेशन का सभापतित्त्व इन्होंने राजसी ठाटबाट के साथ किया। सन् 1932 ई. की 21 जून को इनका अचानक स्वर्गवास हो गया।

रत्नाकर जी केवल कवि ही नहीं थे, वरन् वे अनेक भाषाओं (संस्कृत, प्राकृत, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी) के ज्ञाता तथा विद्वान् भी थे। उनकी कविप्रतिभा जैसी आश्चर्यकारी थी, वैसी ही किसी छंद की व्याख्या करने की क्षमता भी विलक्षण थी। अनेक विद्वानों ने रत्नाकर जी की टीकाओं की प्रशंसा की है।

रत्नाकर जी का ब्रजभाषा पर अद्‌भुत अधिकार था और उनकी प्रसिद्ध ब्रजभाषा रचनाओं में सुंदर प्रयोगों एवं ठेठ शब्दावली का व्यवहार हुआ है। रत्नाकर जी स्वच्छ कल्पना के कवि हैं। उसके द्वारा प्रस्तुत दृश्यावली सदैव अनुभूति सनी है और संवेदना को जाग्रत करनेवाली है।

रत्नाकर जी की रचनाएँ

पद्य

हरिश्चंद्र (खंडकाव्य), गंगावतरण 1923 (पुराख्यान काव्य), उद्धवशतक (प्रबंध काव्य), हिंडोला1894 (मुक्तक), कलकाशी (मुक्तक) समालोचनादर्श (पद्यनिबंध) शृंगारलहरी, गंगालहरी, विष्णुलहरी (मुक्तक), रत्नाष्टक (मुक्तक), वीराष्टक (मुक्तक), प्रकीर्णक पद्यावली (मुक्तक संग्रह)।

गद्य

(क) साहित्यिक लेख – रोला छंद के लक्षण, महाकवि बिहारीलाल की जीवनी, बिहारी सतसई संबंधी साहित्य, साहित्यिक ्व्राजभाषा तथा उसके व्याकरण की सामग्री, बिहारी सतसई की टीकाएँ, बिहारी पर स्फुट लेख।

(ख) ऐतिहासिक लेख – महाराज शिवाजी का एक नया पत्र, शुगवंश का एक शिलालेख, शुंग वंश का एक नया शिलालेख, एक ऐतिहासिक पापाणाश्व की प्राप्ति, एक प्राचीन मूर्ति, समुद्रगुप्त का पाषाणाश्व, घनाक्षरी निय रत्नाकर, वर्ण, सवैया, छंद आदि।

संपादित रचनाएँ

सुधासागर (प्रथम भाग), कविकुल कंठाभरण, दीपप्रकाश, सुंदरश्रृंगार, नृपशंमुकृत नखशिख, हम्मीर हठ, रसिक विनोद, समस्यापूर्ति (भाग 1), हिततरंगिणी, केशवदासकृत नखशिख, सुजानसागर, बिहारी रत्नाकर, सूरसागर।

काव्यागत विशेषताएँ

वर्ण्य विषय– रत्नाकर जी के काव्य का वर्ण्य विषय भक्ति काल के अनुरूप भक्ति, शृंगार, भ्रमर गीत आदि से संबंधित है और उनके वर्णन करने का ढंग रीति काल के अनुसार है। अतः उनके विषय में यह सत्य ही कहा गया

है कि रत्नाकर जी ने भक्तिकाल की आत्मा रीतिकाल के ढाँचे में अवतरित हुई है। रत्नाकर जी का काव्य विषय शुद्ध रूप से पौराणिक है। उन्होंने उद्धवशतक, गंगावतरण, हरिश्चंद्र आदि रचनाओं में पौराणिक कथाओं को ही अपनाया है।

रत्नाकर जी के काव्य में धार्मिक भावना के साथ-साथ राष्ट्रीय भावना भी मिलती है। निम्न पंक्तियों में अंग्रेजी शासन की खरी-खोटी सुनाते हुए उन्होंने गांधी जी के ओजस्वी व्यक्तित्त्व को चित्रित किया है-

कुटिल कुचारी के निगरित मुखारी पर,
वक्र चाहि चक्र चरखे की फाल बाँधी है।
ग्रसित गुरंग ग्राह आरत अथाह परे,
भारत गयंद को गुविंद भयो गांधी है।

भाव चित्रण- रत्नाकर जी भाव-लोक के कुशल चितेरे थे। उन्होंने क्रोध प्रसन्नता, उत्साह शोक, प्रेम घृणा आदि मानवीय व्यापारों के सुंदर चित्र उपस्थित किए हैं।

गोपी-उद्धव-संवाद का एक अंश देखिए-
टूक-टूक ह्वै है मन मुकुर हमारे हाय,
चूँकि हूँ कठोर बैन-पाहन चलावौना।
एक मनमोहन तौ बसि के उजारयौ मोहिं,
हिय में अनेक मन मोहन बसावौ ना।।

बाह्य दृश्य चित्रण- रत्नाकर जी में बाह्य दृश्य चित्रण की अद्‌भुत क्षमता थी। सुदामा की दीनता पूर्ण चित्र में निम्न पंक्तियों में देखिए-

जै जै महाराज दुजराज दुजराज एक,
सुहृदय सुदामा राज-द्वार आज आए हैं।
कहैं रतनाकर प्रकट ही दरिद्र रूप
फटही लंगोटी बाँधि बाँध सौं जगाए हैं।।
छीनता की छाप दीनता की छाप धारे देह,
लाठी के सहारे काठी नीठि ठहराए हैं।
संकुचित कंघ पै अघोटी-सी कछौटी लिए,
ता पर सछिद्र छोटी लोटी लटकाए हैं।।

प्रकृति चित्रण- रत्नाकर जी अपने प्रकृति चित्रण में अत्यंत सफल रहे हैं। उनके प्रकृति-चित्रण पर रीति कालीन प्रभाव स्पष्ट रूप से पड़ा है। वर्षा ऋतु का सुंदर चित्रण नीचे की पंक्तियों में देखिए-

छाई सुभ सुबना सुहाई रितु पावस की,
पूरब में पश्चिम में, उत्तर उदीची में।
कहें रत्नाकर कदंब पुल के हैं बन,
लरजै लवग लता ललित बगीची में।।

भाषा– रत्नाकर जी की भाषा शुद्ध ब्रज भाषा है। उन्होंने ब्रज भाषा में परिमार्जन भी किया। उन्होंने भूले हुए मुहावरों को अपनाया, लोकोक्तियों को स्थान दिया और बोल चाल के शब्दों को ग्रहण किया।

रत्नाकर जी की शब्द–योजना पूर्ण निर्दोष है। उन्होंने शब्दों का चयन और परिस्थितियों के अनुकूल ही किया है।

मुहावरों के प्रयोग में रत्नाकर जी अपनी समता नहीं रखते। एक उदाहरण देखिए–

अहह जाति तब मत्सरता अजहूँ न भुलाई।
हेर फेर सौ बेर जदपि मुँह की तुम खाई।

रत्नाकर जी को भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है। किंतु इससे उसके सौंदर्य में कोई कमी नहीं होने पाई है। उर्दू–फारसी के विद्वान होते हुए भी रत्नाकर जी ने उर्दू–फारसी के शब्दों के प्रयोग में अत्यंत संयम से काम लिया है। उन्होंने उर्दू–फारसी के केवल उन्हीं शब्दों को अपनाया है जिनसे भाषा की स्वाभाविकता नष्ट नहीं हुई।

संक्षेप में रत्नाकर जी की भाषा संयत, प्रौढ़ और प्रवाह पूर्ण है।

शैली– रत्नाकर जी की शैली रीतिकाल की अलंकृत शैली है। उनकी इस शैली में सूरदास और मीरा की भावुकता, देव की प्रेममयता, बिहारी की कलात्मकता, पद्माकर की प्रभावोत्पादकता और भूषण की ओजस्विता का सुंदर समन्वय है। रत्नाकर जी की शैली में भाव और भाषा का पूर्ण संयोग हैं।

रस– यों रत्नाकर जी के काव्य में सभी रस मिलते हैं, पर शृंगार, करुण वीर और वीभत्स रस के चित्रण में उन्हें विशेष सफलता मिली है।

छंद– रत्नाकर जी ने विविध प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है, किंतु रोला, कवित्त और सवैया छंद उनके विशेष प्रिय छंदों में से हैं।

अलंकार– रत्नाकर जी अपने युग में सर्वाधिक अलंकार प्रिय कवि हैं। उनकी रचना का प्रत्येक छंद अलंकारों की सुषमा से परिपूर्ण है। रत्नाकर जी का सबसे अधिक प्रिय अलंकार साँग रूपक है। इसके अतिरिक्त यमक, श्लेष,

अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीप स्मरण, आदि अलंकार का सौंदर्य भी रत्नाकर जी के काव्य में देखा जा सकता है।

समालोचना

रत्नाकर जी ब्रजभाषा काव्य के अंतिम ऐतिहासिक कवि थे। ब्रजभाषा के आधुनिक काल के कवियों में उनका स्थान अद्वितीय है। उनकी कविता भक्ति काल और रीति काल दोनों का एक-एक साथ प्रतिनिधित्व करती है। उन्होंने प्राचीन काव्य परंपराओं का नवीन दृष्टिकोण से अनुशीलन किया और ब्रजभाषा का संस्कार कर उसे इस योग्य बना दिया कि वह खड़ी बोली के समक्ष अपना माधुर्य व्यक्त करने में समर्थ हो सके। भ्रमर गीत की परंपरा में रत्नाकर जी के 'उद्धव शतक' का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। अपने काव्य गुणों के कारण रत्नाकर जी हिंदी साहित्य में चिर स्मरणीय रहेंगे।

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' (1883-1972) हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के द्विवेदी युगीन साहित्यकार हैं। इन्होंने 'सनेही' उपनाम से कोमल भावनाओं की कविताएँ, 'त्रिशूल' उपनाम से राष्ट्रीय कविताएँ तथा 'तरंगी' एवं 'अलमस्त' उपनाम से हास्य-व्यंग्य की कविताएँ लिखीं। इनकी देशभक्ति तथा जन-जागरण से सम्बद्ध कविताएँ अत्यधिक प्रसिद्ध रही हैं।

जीवन-परिचय

आरम्भिक जीवन

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' जी का जन्म श्रावण शुक्ल त्रयोदशी, संवत् 1940 विक्रमीय को रात्रि 9:00 बजे हुआ था। स्वयं सनेही जी द्वारा उल्लिखित इस जन्मतिथि के अनुसार उनका जन्म वस्तुतः अंग्रेजी दिनांक 16 अगस्त 1883 ई. को सिद्ध होता है परंतु उक्त उल्लिखित स्थल पर ही कोष्ठक के अंतर्गत अंग्रेजी दिनांक 21 अगस्त सन् 1883 ई. लिखा हुआ है। चूँकि त्रयोदशी तिथि के दो ही दिन बाद पूर्णिमा हो जाती है और फिर भाद्रपद कृष्ण पक्ष की प्रथमा, द्वितीया आदि तिथि आरंभ हो जाएगी, इसलिए हिंदू पंचांग के अनुसार उल्लिखित उक्त तिथि में मुद्रण त्रुटि से पाँच दिनों का अंतर होना असंभव है। बहरहाल

सनेही जी की जन्मतिथि 16 अगस्त 1883 के बदले 21 अगस्त 1883 क्यों मानी गयी यह स्वतंत्र शोध का विषय है।

उनके पिता का नाम पंडित अवसेरीलाल शुक्ल तथा माता का नाम श्रीमती रुक्मिणी देवी था। उनका जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के हड़हा नामक ग्राम में हुआ था। नौ वर्ष की आयु में उनका उपनयन संस्कार हुआ तथा तेरह वर्ष की अवस्था में उन्नाव के ही जैतीपुर ग्राम के निवासी स्वनामधर्मा श्री पंडित गयाप्रसाद जी की पुत्री भिक्षुणी देवी के साथ उनका विवाह हुआ था।

शिक्षा-दीक्षा

उस समय उर्दू ही सरकारी भाषा थी इसलिए पंडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' जी ने भी बचपन में ही उर्दू एवं फारसी का अच्छा अध्ययन किया था। सन् 1898 ई. में मिडिल पास करके 1899 में ही वे अध्यापन कार्य में लग गये थे। सन 1902 में नार्मल का प्रशिक्षण प्राप्त करने वे लखनऊ गये और नॉर्मल पास करके पुनः अध्यापन कार्य में लग गये थे। अध्ययन काल में उन्होंने समस्त परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण की थी। उन्होंने छन्दःशास्त्र का भी उत्तम ज्ञान प्राप्त किया था।

काव्य-लेखन का आरम्भ

कविता लिखने की प्रवृत्ति सनेही जी में बाल्यकाल से ही थी। सन् 1902 ई. के आसपास ही वे गंभीर रूप से काव्य-सृजन में जुट गये थे। उनकी पहली कविता सन् 1904 या 1905 में मनोहर लाल मिश्र के संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'रसिक मित्र' में प्रकाशित हुई थी। इसके बाद उनकी रचनाएँ 'रसिक रहस्य', 'साहित्य सरोवर' तथा 'रसिक मित्र' जैसी पत्रिकाओं में बराबर प्रकाशित होने लगीं थीं। सन् 1913 में अमर शहीद श्री गणेश शंकर विद्यार्थी के आग्रह पर साप्ताहिक 'प्रताप' में भी वे राष्ट्रीय कविताएँ लिखने लगे। 'प्रताप' में छपी उनकी 'कृषक क्रंदन' शीर्षक रचना ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया। सन् 1914 ई. से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के कहने से प्रयाग से निकलने वाली मासिक पत्रिका 'सरस्वती' में भी वे लिखने लगे।

उपनाम 'त्रिशूल', 'तरंगी' एवं 'अलमस्त'

पंडित गयाप्रसाद शुक्ल जी ने चार उपनामों से कविता लिखी है– सनेही, त्रिशूल, तरंगी और अलमस्त। सरकारी नौकरी के कारण उन्हें अपने उपनाम 'सनेही' के अतिरिक्त दूसरा उपनाम 'त्रिशूल' रखना पड़ा। हास्य एवं व्यंग्य रचनाएँ वे 'अलमस्त' या 'तरंगी' के नाम से भी लिखते रहे। 'त्रिशूल' उपनाम से उन्होंने प्रायः राष्ट्रीय कविताएं लिखी तथा उन रचनाओं ने ऐसी हलचल पैदा कर दी कि अंग्रेजी हुकूमत 'त्रिशूल' नाम के कवि की खोज में हाथ धोकर पीछे पड़ गयी थी।

कानपुर-निवास

1921 ई. में महात्मा गाँधी द्वारा असहयोग आंदोलन के आह्वान पर अपने 22 वर्ष के अध्यापकीय कार्य से निवृत्ति लेते हुए सनेही जी उन्नाव टाउन स्कूल के प्रधानाध्यापक पद को छोड़कर अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी जी के अनुरोध तथा राष्ट्रीय काव्य के अनन्य प्रेमी लाला फूलचंद जैन के प्रेमाग्रह से कानपुर आकर रहने लगे। तब से उनके जीवन का अधिकांश समय कानपुर में ही बीता।

एक बार सरकारी नौकरी छोड़ने पर उनका मन सरकारी नौकरी से इस प्रकार विरत हुआ कि सन् 1922 ई. में ही महामना मदन मोहन मालवीय द्वारा काशी हिंदू विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य के लिए बुलाये जाने पर भी उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

सम्पादन

जिस समय सनेही जी कानपुर आये उस समय कानपुर से कोई दैनिक पत्र नहीं निकलता था। सनेही जी ने फूलचंद जैन के सहयोग से एक प्रेस खोलकर पंडित रमाशंकर जी अवस्थी के सहयोग से दैनिक राष्ट्रीय पत्र 'वर्तमान' का प्रकाशन आरंभ किया, जिसमें वे और अवस्थी जी समान रूप से भागीदार थे।

सनेही जी ने गोरखपुर से निकलने वाले मासिक पत्र 'कवि' का संपादन लगातार 10 वर्षों तक किया और उसके बंद होने पर सन् 1928 ई. में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से अपना निजी प्रेस खोलकर काव्य संबंधी मासिक पत्र सुकवि का प्रकाशन आरंभ किया। यह पत्रिका 22 वर्षों तक बराबर प्रकाशित होती रही। इस पत्र के माध्यम से उन्होंने हिंदी को सैकड़ों कवि प्रदान

किये। प्रसिद्ध कवि अनूप शर्मा के अतिरिक्त हिंदी के और भी अनेक समर्थ कवि सनेही जी के शिष्य रहे हैं। राजा-महाराजाओं से लेकर सामान्य व्यक्तियों तक में हिंदी कविता के प्रति प्रेम और श्रद्धा का भाव उत्पन्न करने का श्रेय 'सुकवि' के संपादन के माध्यम से सनेही जी को ही है। इस प्रकार 32 वर्षों तक कविता पत्रिका का संपादन करते हुए उन्होंने काव्य-क्षेत्र में राष्ट्रीय तथा सामाजिक भावनाओं का प्रसार किया एवं रीतिकालीन शृंगारिक दलदल से निकाल कर देशहित में नया वातावरण उत्पन्न करने का प्रबल प्रयत्न किया।

कवि सम्मेलनों के कवि

कानपुर निवास की अवधि में ही सनेही जी ने अनेक बड़े-बड़े कवि सम्मेलनों का आयोजन किया। सैकड़ों कवि सम्मेलनों की अध्यक्षता की जिसमें अनेक अखिल भारतीय स्तर के भी थे। कवि सम्मेलनों के ही सिलसिले में उन्होंने देश भर का भ्रमण किया। बड़ी-बड़ी रियासतों में भी गये और अनेक राजा-महाराजाओं से उनका संपर्क भी रहा।

उनकी एक कविता 'स्वदेश' का यह छन्द-बन्ध जन-जन की जिह्वा पर आद्यन्त विराजमान रहा है--

जो भरा नहीं है भावों से,
बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है,
जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।।

इन्हीं कवि-सम्मेलनों के कारण वे अपने समय में कवि सम्मेलनों के हृदय हार बने हुए थे। हालाँकि इन कवि-सम्मेलनों के कारण ही उनकी रचनात्मक श्रेष्ठता को भारी क्षति पहुँची तथा वे हिन्दी कविता के इतिहास में उस उच्च पद से वंचित रह गये जहाँ तक पहुँचने की उनमें स्वाभाविक क्षमता थी। लगभग नवासी वर्ष की आयु में कानपुर के उर्सला अस्पताल में 20 मई, 1972 ई. को उनका निधन हो गया।

प्रकाशित रचनाएँ
काव्य-पुस्तिकाएँ
प्रेम पचीसी (1905 ई. के आसपास)
गप्पाष्टक
कुसुमांजलि (1915)

कृषक-क्रन्दन (1916)

त्रिशूल तरंग (1919)

राष्ट्रीय मंत्र (1921)

संजीवनी (सम्पादित) 1921,

राष्ट्रीय वीणा (सम्पादित) 1922,

कलामे-त्रिशूल (1930 ई. के आसपास)

करुणा कादंबिनी (1958)

इसके अतिरिक्त दो और काव्य-पुस्तिका 'मानस तरंग' एवं 'करुण भारती' का नामोल्लेख भी मिलता है।

ये छोटी-छोटी काव्य-पुस्तिकाएँ सनेही जी के जीवनकाल में ही अनुपलब्ध हो गयी थीं।

समग्र संचयन-

सनेही रचनावली

उनकी उपलब्ध समग्र रचनाओं का यह संकलन हिंदी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद से 1984 ई. में प्रकाशित होकर सहज उपलब्ध है।

भाषा-शैली

सनेही जी ने सामान्य जन को ध्यान में रखकर रचनाएँ की हैं। अतः उनकी कविताओं की भाषा सर्वत्र सहज संप्रेष्य है। उन्होंने खड़ीबोली हिन्दी के अतिरिक्त ब्रजभाषा में भी लिखा है। 'सनेही' उपनाम से लिखी गयी रचनाओं में खड़ीबोली एवं ब्रजभाषा का परिमार्जित रूप मिलता है, जबकि 'त्रिशूल' उपनाम से लिखी गयी रचनाओं में उर्दू का मिश्रण अपेक्षाकृत अधिक है, हालांकि वह भाषा भी संप्रेषण में है सहज ही। सनेही जी के काव्य में छन्दों की विविधता है। उर्दू की बहरों, संस्कृत के वर्णवृत्तों और हिंदी के मात्रिक छन्दों का उन्होंने समान अधिकार से प्रयोग किया है। उनके छन्द-प्रयोग का यह वैशिष्ट्य है कि बड़े से बड़ा छन्दशास्त्री भी उनके काव्य में छन्द की त्रुटि नहीं निकाल सकता। उन्होंने घनाक्षरी, सवैया और छप्पय छन्द का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक किया है। इसी प्रकार उर्दू के विविध बहरों में मसनवी, मुसद्दस और अपेक्षाकृत गजल का प्रयोग सर्वाधिक किया है।

सम्मान एवं उपाधियाँ

देश के अनेक साहित्यिक संस्थाओं ने समय-समय पर सनेही जी का सम्मान एवं अभिनंदन किया। युवावस्था में ही उन्हें भारत धर्म महामंडल, काशी ने 'साहित्य-सितारेन्दु' की उपाधि प्रदान की थी। 1966 ई. में उत्तर प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें 'साहित्य-वारिधि' की उपाधि प्रदान की। 1968 ई. में अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने उन्हें 'साहित्य-वाचस्पति' की उपाधि प्रदान की थी। सन 1970 ई. में कानपुर विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.लिट्. की मानद उपाधि से विभूषित किया था। इसके अतिरिक्त अनेक सांस्कृतिक संस्थाओं तथा पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा उन्हें 'राष्ट्रीय महाकवि', 'सुकवि-सम्राट', 'आचार्य' आदि अनेक उपाधियों से अलंकृत किया गया था।

श्रीधर पाठक

श्रीधर पाठक (11 जनवरी1858 - 13 सितंबर1928) प्राकृतिक सौंदर्य, स्वदेश प्रेम तथा समाजसुधार की भावनाओ के हिन्दी कवि थे। वे प्रकृतिप्रेमी, सरल, उदार, नम्र, सहृदय, स्वच्छंद तथा विनोदी थे। वे हिंदी साहित्य सम्मेलन के पाँचवें अधिवेशन (1915, लखनऊ) के सभापति हुए और 'कविभूषण' की उपाधि से विभूषित भी। हिंदी, संस्कृत और अंग्रेजी पर उनका समान अधिकार था।

जीवन परिचय

उनका जन्म उत्तर प्रदेश में जौंवरी नाम गांव, तहसील-फिरोजाबाद, जिला-आगरा में पंडित लीलाधर के घर हुआ। श्रीधर पाठक सारस्वत ब्राह्मणों के उस परिवार में से थे जो 8वीं शती में पंजाब के सिरसा से आकर आगरा जिले के जोंधरी गाँव में बसा था। एक सुसंस्कृत परिवार में उत्पन्न होने के कारण आरंभ से ही इनकी रूचि विद्यार्जन में थी। छोटी अवस्था में ही इन्होंने घर पर संस्कृत और फारसी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। तदुपरांत औपचारिक रूप से विद्यालयी शिक्षा लेते हुए ये हिन्दी प्रवेशिका (1875) और 'अंग्रेजी मिडिल' (1879) परीक्षाओं में सर्वप्रथम रहे। फिर 'ऐंट्रेंस परीक्षा' (1880-81) में भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। उन दिनों भारत में ऐंट्रेंस तक की शिक्षा पर्याप्त उच्च मानी जाती थी। उनकी नियुक्ति राजकीय सेवा में हो गई। सर्वप्रथम उन्होंने जनगणना आयुक्त रूप में कलकत्ता के कार्यालय में कार्य किया। उन दिनों ब्रिटिश सरकार के अधिकांश

केन्द्रीय कार्यालय कलकत्ता में ही थे। जनगणना के संदर्भ में इन्हें भारत के कई नगरों में जाना पड़ा। इसी दौरान इन्होंने विभिन्न पर्वतीय प्रदेशों की यात्रा की तथा इन्हें प्रकृति-सौंदर्य का निकट से अवलोकन करने का अवसर मिला। कालान्तर में अन्य अनेक कार्यालयों में भी कार्य किया, जिनमें रेलवे, पब्लिक वर्क्स तथा सिंचाई-विभाग आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। धीरे-धीरे ये अधीक्षक के पद पर पहुँचे। 1914 में सेवा-निवृत्त होने के पश्चात ये स्थायी रूप से प्रयाग में रहने लगे। यहीं सन 1928 में इनका देहावसान हो गया।

रचनाएँ

इनकी रचनाएँ क्रमशः इस तरह हैं—मनोविनोद (भाग-1,2,3), धन विनय (1900), गुनवंत हेमंत (1900), वनाष्टक (1912), देहरादून (1915), गोखले गुनाष्टक (1915) इत्यादि। अन्य रचनाएँ हैं- बाल भूगोल, एकांतवासी योगी, जगत सचाई सार, ऊजड़ग्राम, श्रांत पथिक, काश्मीरसुषमा, आराध्य शोकांजलि, जार्ज वंदना, भक्ति विभा, श्री गोखले प्रशस्ति, श्रीगोपिकागीत, भारतगीत, तिलस्माती मुँदरी और विभिन्न स्फुट निबंध तथा पत्रदि।

इनकी पहली रचना गुनवंत हेमंत है।

काव्यगत विशेषताएँ

पाठक जी मौलिक उद्भावनाओं के कवि हैं। विषय और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से आधुनिक हिंदी काव्य को एक नया मोड़ देने के कारण उन्हें स्वच्छंद भावधारा का सच्चा प्रवर्तक ठहराया गया। उन्होंने काव्य को अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छंद, वैयक्तिक और यथार्थभरी दृष्टि से देखने का सफल प्रयास किया जिससे आगामी छायावादी भावभूमि को बड़ा बल मिला और पूर्वागत परंपरित रूढ़ काव्यढाँचा टूट गया। सफल काव्यानुवादों द्वारा उन्होंने हिंदी को नई दृष्टि देने का प्रयत्न किया। यद्यपि उन्होंने ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों में रचनाएँ कीं तथापि समर्थक वे खड़ीबोली के ही थे। थोड़े में, उनके काव्य की विशेषताएँ हैं - सहज प्रकृतिचित्रण, वैयक्तिक अनुभूति, राष्ट्रीयता, नए छंदों, लयों और बंदिशों की खोज, विषयप्रधान दृष्टि, नवीन भावप्रकाशन की क्षमता से भरकर नवीन भाषाप्रयोग, प्राच्य और पाश्चात्य तथा पुराने और नए का समन्वय।

4

छायावादी युग की कविता

हिंदी कविता में छायावाद का युग द्विवेदी युग के बाद आया। द्विवेदी युग की कविता नीरस उपदेशात्मक और इतिवृत्तात्मक थी। छायावाद में इसके विरुद्ध विद्रोह करते हुए कल्पनाप्रधान, भावोन्मेषयुक्त कविता रची गई। यह भाषा और भावों के स्तर पर अपने दौर के बांग्ला के सुप्रसिद्ध कवि और नोबेल पुरस्कार विजेता रवींद्रनाथ ठाकुर की गीतांजली से बहुत प्रभावित हुई। यह प्राचीन संस्कृत साहित्य (वेदों, उपनिषदों तथा कालिदास की रचनाओं) और मध्यकालीन हिंदी साहित्य (भक्ति और श्रृंगार की कविताओं) से भी प्रभावित हुई। इसमें बौद्ध दर्शन और सूफी दर्शन का भी प्रभाव लक्षित होता है। छायावादयुग उस सांस्कृतिक और साहित्यिक जागरण का सार्वभौम विकासकाल था जिसका आरंभ राष्ट्रीय परिधि में भारतेंदुयुग से हुआ था।

वस्तुजगत् अपना घनत्व खोकर इस जग में
सूक्ष्म रूप धारण कर लेता, भावद्रवित हो।

कवि के केवल सूक्ष्म भावात्मक दर्शन का ही नहीं, 'छाया' से उसके सूक्ष्म कलाभिव्यजंन का भी परिचय मिलता है। उसकी काव्यकला में वाच्यार्थ की अपेक्षा लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता है। अनुभूति की निगूढ़ता के कारण अस्फुटता भी है। शैली में राग की नवोद्बुद्धता अथवा नवीन व्यंजकता है।

द्विवेदी युग में कविता का ढाँचा पद्य का था। वस्तुतः गद्य का प्रबंध ही उसमें पद्य हो गया था, भाषा भी गद्यवत् हो गई थी। छायावाद ने पद्य का ढाँचा तोड़कर खड़ी बोली को काव्यात्मक बना दिया। पद्य में स्थूल इतिवृत्त था, छायावाद के काव्य में भावात्मक अतंर्वत्त था, छायावाद के काव्य में भावात्मक

अंतर्वृत्त आ गया। भाव के अनुरूप ही छायावाद की भाषा और छंद भी रागात्मक और रसात्मक हो गया। ब्रजभाषा के बाद छायावाद द्वारा गीतकाव्य का पुनरुत्थान हुआ। छायावाद युग के प्रतिनिधि कवि हैं- प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, रामकुमार। पूर्वानुगामी सहयोगी हैं- माखनलाल और 'नवीन'।

गीतकाव्य के बाद छायावाद में भी महाकाव्य का निर्माण हुआ। तुलसीदास जैसे 'स्वांत:' को लेकर लोकसंग्रह के पथ पर अग्रसर हुए थे वैसे ही छायावाद के कवि भी 'स्वात्म' को लेकर एकांत के स्वगत जगत् से सार्वजनिक जगत् में अग्रसर हुए। प्रसाद की 'कामायनी' और पंत का 'लोकायतन' इसका प्रमाण हैं। 'कामायनी' सिंधु में विंदु (एकांत अंतर्जगत्) की ओर है, 'लोकायतन' विंदु में सिंधु (सार्वजनिक जगत्) की ओर।

छायावाद की प्रवृत्तियां

1. वैयक्तिकता–छायावादी काव्य में वैयक्तिकता का प्राधान्य है। कविता वैयक्तिक चिंतन और अनुभूति की परिधि में सीमित होने के कारण अंतर्मुखी हो गई, कवि के अहम् भाव में निबद्ध हो गई। कवियों ने काव्य में अपने सुख-दु:ख, उतार-चढ़ाव, आशा-निराशा की अभिव्यक्ति खुल कर की। उसने समग्र वस्तुजगत को अपनी भावनाओं में रंग कर देखा। जयशंकर प्रसाद का 'आंसू' तथा सुमित्रा नंदन पंत के 'उच्छवास' और 'आंसू' व्यक्तिवादी अभिव्यक्ति के सुंदर निदर्शन हैं। इसके व्यक्तिवाद के स्व में सर्व सन्निहित है। डॉ. शिवदान सिंह चौहान इस संबंध में अत्यंत मार्मिक शब्दों में लिखते हैं -''कवि का मैं प्रत्येक प्रबुद्ध भारतवासी का मैं था, इस कारण कवि ने विषयगत दृष्टि से अपनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए जो लाक्षणिक भाषा और अप्रस्तुत रचना शैली अपनाई, उसके संकेत और प्रतीक हर व्यक्ति के लिए सहज प्रेषणीय बन सके।'' छायावादी कवियों की भावनाएं यदि उनके विशिष्ट वैयक्तिक दु:खों के रोने-धोने तक ही सीमित रहतीं, उनके भाव यदि केवल आत्मकेंद्रित ही होते तो उनमें इतनी व्यापक प्रेषणीयता कदापि न आ पाती। निराला ने लिखा है-

मैंने मैं शैली अपनाई,
देखा एक दु:खी निज भाई
दुख की छाया पड़ी हृदय में
झट उमड़ वेदना आई

इससे स्पष्ट है कि व्यक्तिगत सुख-दु:ख की अपेक्षा अपने से अन्य के सुख-दुख की अनूभूति ने ही नए कवियों के भाव-प्रवण और कल्पनाशील हृदयों को स्वच्छंदतावाद की ओर प्रवृत्त किया।

2. प्रकृति-सौंदर्य और प्रेम की व्यंजना–छायावादी कवि का मन प्रकृति चित्रण में खूब रमा है और प्रकृति के सौंदर्य और प्रेम की व्यंजना छायावादी कविता की एक प्रमुख विशेषता रही है। छायावादी कवियों ने प्रकृति को काव्य में सजीव बना दिया है। प्रकृति सौंदर्य और प्रेम की अत्यधिक व्यंजना के कारण ही डॉ. देवराज ने छायावादी काव्य को 'प्रकृति-काव्य' कहा है। छायावादी काव्य में प्रकृति-सौंदर्य के अनेक चित्रण मिलते हैं, जैसे 1. आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण 2. उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण 3. प्रकृति का मानवीकरण 4. नारी रूप में प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन 5. आलंकारिक चित्रण 6. प्रकृति का वातावरण और पृष्ठभूमि के रूप में चित्रण 7. रहस्यात्मक अभिव्यक्ति के साधन के रूप में चित्रण।

प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी आदि छायावाद के सभी प्रमुख कवियों ने प्रकृति का नारी रूप में चित्रण किया और सौंदर्य व प्रेम की अभिव्यक्ति की। पंत की कविता का एक उदाहरण देखिए-

बांसों का झुरमुट
संध्या का झुटपुट
हैं चहक रहीं चिड़ियां
टी वी टी टुट् टुट्

छायावादी कवि के लिए प्रकृति की प्रत्येक छवि विस्मयोत्पादक बन जाती है। वह प्राकृतिक सौंदर्य पर विमुग्ध होकर रहस्यात्मकता की ओर उन्मुख हो जाता है-

मैं भूल गया सीमाएं जिससे
वह छवि मिल गई मुझे

छायावादी कवि ने निजी अनुभूतियों का व्यक्तिकरण प्रकृति के माध्यम से किया है, जैसे-

मैं नीर भरी दुख की बदली

छायावादी कवि सौंदर्यानुभूति से अभिभूत है। अपने आंतरिक सौंदर्य का उद्‌घाटन प्रकृति के माध्यम से करता हुआ दिखाई पड़ता है-

शशि मुख पर घूंघट डाले, अंचल में दीप छिपाए
जीवन की गोधूलि में, कौतूहल से तुम आए -प्रसाद

अधिकांश छायावादी कवियों ने प्रकृति के कोमल रूप का चित्रण किया है, परंतु कहीं-कहीं उसके उग्र रूप का चित्रण भी हुआ है।

3. शृंगारिकता रूछायावादी काव्य में शृंगार-भावना की प्रधानता है, परंतु यह शृंगार रीतिकालीन स्थूल एवं ऐन्द्रिय शृंगार से भिन्न है। छायावादी शृंगार-भावना मानसिक एवं अतीन्द्रिय है। यह शृंगार-भावना दो रूपों में अभिव्यक्त हुई है- 1. नारी के अतीन्द्रिय सौंदर्य चित्रण द्वारा 2. प्रकृति पर नारी-भावना के आरोप के माध्यम से। पंत और प्रसाद ने अछूती कल्पनाओं की तूलिका से नारी के सौंदर्य का चित्रण किया है। एक उदाहरण देखिए-

तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा स्नान
तुम्हारी वाणी में कल्याणी
त्रिवेणी की लहरों का गान

नारी का अतीन्द्रिय सौंदर्य चित्रण प्रसाद जी द्वारा श्रद्धा के सौंदर्य में द्रष्टव्य है-

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघवन बीच गुलाबी रंग।

निराला की 'जूही की कली' कविता में दूसरे प्रकार की शृंगार-भावना का चित्र है। प्रसाद ने 'कामायनी' में सौंदर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान माना है। इस प्रकार छायावादी शृंगार-भावना और उसके सभी उपकरणों (नारी, सौंदर्य, प्रेम) का चित्रण सूक्ष्म एवं उदात्त है। उसमें वासना की गंध बहुत कम है।

छायवादी कवि को प्रेम के क्षेत्र में जाति, वर्ण, सामाजिक रीति-नीति, रूढ़ियां और मिथ्या मान्यताएं मान्य नहीं हैं, निराला जी लिखते हैं -

दोनों हम भिन्न वर्ण, भिन्न जाति, भिन्न रूप।
भिन्न धर्म भाव, पर केवल अपनाव से प्राणों से एक थे।

इनके प्रेम चित्रण में कोई लुकाव-छिपाव-दुराव नहीं है। उसमें कवि की वैयक्तिकता है। इनकी प्रणय गाथा का अंत प्रायः दुःख,निराशा तथा असफलता में होता है। अतः उसमें मिलन की अनुभूतियों की अपेक्षा विरहानुभूतियों का

चित्रण अधिक हुआ है और इस दिशा में उन्हें आशातीत सफलता भी मिली, पंत के शब्दों में -

शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह अहह कराहते इस शब्द को
किसी कुलिश की तीक्ष्ण चुभती नोंक से
निठुर विधि ने आंसुओं से है लिखा

4. रहस्यानुभूति—छायावादी कवि को अज्ञात सत्ता के प्रति एक विशेष आकर्षण रहा है। वह प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में इसी सत्ता के दर्शन करता है। उसका इस अनंत के प्रति प्रमुख रूप से विस्मय तथा जिज्ञासा का भाव है। लेकिन उनका रहस्य जिज्ञासामूलक है, उसे कबीर और दादू के रहस्यवाद के समक्ष खड़ा नहीं किया जा सकता। निराला तत्व ज्ञान के कारण, तो पंत प्राकृतिक सौंदर्य से रहस्योन्मुख हुए। प्रेम और वेदना ने महादेवी को रहस्योन्मुख किया तो प्रसाद ने उस परमसत्ता को अपने बाहर देखा। यद्यपि महादेवी में अवश्य ही रहस्य-साधना की दृढ़ता दिखाई पड़ती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में,''कवि उस अनंत अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से अभिव्यंजना करते हैं। ...तथा छायावाद का एक अर्थ रहस्यवाद भी है। अत: सुधी आलोचक रहस्यवाद को छायावाद का प्राण मानते हैं।'' छायावादी कवियों की कुछ रहस्य अनुभूतियों के उदाहरण देखिए-

हे अनंत रमणीय कौन तुम!
यह मैं कैसे कह सकता!
कैसे हो,क्या हो इसका तो
भार विचार न सह सकता? - प्रसाद
प्रिय चिरन्तन है सजनि
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं
तुम मुझ में फिर परिचय क्या! --महादेवी
प्रथम रश्मि का आना रंगिणि
तुने कैसे पहचाना? – पंत
किस अनंत का नीला अंचल हिला-हिलाकर आती तुम सजी मंडलाकर – निराला
तृणवीरुध लहलहे हो किसके रस से सिंचे हुए –प्रसाद
तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूं उस ओर क्या है – महादेवी

5. तत्त्व चिंतन–छायावादी कविता में अद्वैत-दर्शन, योग-दर्शन, विशिष्टाद्वैत-दर्शन, आनंदवाद आदि के अंतर्गत दार्शनिक चिंतन भी मिलता है। प्रसाद का मूल दर्शन आनंदवाद है तो महादेवी ने अद्वैत, सांख्य एवं योग दर्शन का विवेचन अपने ढंग से किया है।

6. वेदना और करुणा की विवृत्ति–छायावादी कविता में वेदना की अभिव्यक्ति करुणा और निराशा के रूप में हुई है। हर्ष-शोक, हास-रुदन, जन्म-मरण, विरह-मिलन आदि से उत्पन्न विषमताओं से घिरे हुए मानव-जीवन को देखकर कवि हृदय में वेदना और करुणा उमड़ पड़ती है। जीवन में मानव-मन की आकांक्षाओं और अभिलाषाओं की असफलता पर कवि-हृदय क्रन्दन करने लगता है। छायावादी कवि सौंदर्य प्रेमी होता है, किंतु सौंदर्य की क्षणभंगुरता को देख उसका हृदय आकुल हो उठता है। हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति की अपूर्णता, अभिलाषाओं की विफलता, सौंदर्य की नश्वरता, प्रेयसी की निष्ठुरता, मानवीय दुर्बलताओं के प्रति संवेदनशीलता और प्रकृति की रहस्यमयता आदि अनेक कारणों से छायावादी कवि के काव्य में वेदना और करुणा की अधिकता पाई जाती है। प्रसाद ने 'आंसू' में वेदना को साकार रूप दिया है। पंत तो काव्य की उत्पत्ति ही वेदना को मानते हैं -

वियोगी होगा पहला कवि, आह से निकला होगा गान।
उमड़ कर आंखों से चुपचाप, बही होगी कविता अजान।

महादेवी तो पीड़ा में ही अपने प्रिय को ढूंढ़ती हैं -

तुमको पीड़ा में ढूंढ़ा, तुममें ढूंढूंगी पीड़ा।

और पंत जी कहते हैं -

चिर पूर्ण नहीं कुछ जीवन में
अस्थिर है रूप जगत का मद।

संसार में दुख और वेदना को देखकर छायावादी कवि पलायनवादी भी हुआ। वह इस संसार से ऊब चुका है और कहीं ओर चला जाना चाहता है। इसका मुख्य कारण यह है कि वह इस संसार में दुख ही दुख देखता है, यहां सर्वत्र सुख का अभाव दृष्टिगोचर होता है। इस विषय में कवि पंत की अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है–

यहां सुख सरसों, शोक सुमेरु
अरे जग है जग का कंकाल
वृथा रे, यह अरण्य चीत्कार
शांति, सुख है उस पार

निराला भी जग के उस पार जाना चाहते हैं। प्रसाद भी अत्यंत प्रसिद्ध गीत में नाविक से इस कोलाहलपूर्ण संसार से दूर चलने का अनुरोध करते हैं।

7. मानवतावादी दृष्टिकोण–छायावादी काव्य भारतीय सर्वात्मवाद तथा अद्वैतवाद से गहरे रूप से प्रभावित हुआ। इस काव्य पर रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, गांधी, टैगोर तथा अरविंद के दर्शन का भी काफी प्रभाव रहा। स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के कारण छायावादी कवि को साहित्य के समान धर्म, दर्शन आदि में भी रूढ़ियों एवं मिथ्या परम्पराएं मान्य नहीं हैं। रविंद्रनाथ ठाकुर,जो बंगला साहित्य में मानवतावाद का उद्घोष पहले ही कर चुके थे, का प्रभाव छायावादी कवियों पर भी रहा। छायावादी कवि सारे संसार से प्रेम करता है। उसके लिए भारतीय और अभारतीय में कोई भेद नहीं क्योंकि सर्वत्र एक ही आत्मा व्याप्त है। विश्वमानवता की प्रतिष्ठा उसका आदर्श है।

8. नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण–नारी के प्रति छायावाद ने सर्वथा नवीन दृष्टिकोण अपनाया है। यहां नारी वासना की पूर्ति का साधन नहीं है, यहां तो वह प्रेयसी, जीवन-सहचरी, मां आदि विविध रूपों में उतरी है। उसका मुख्य रूप प्रेयसी का ही रहा है। यह प्रेयसी पार्थिव जगत की स्थूल नारी नहीं है, वरन कल्पना लोक की सुकुमारी देवी है। नारी के संबंध में प्रसाद जी कहते हैं-

नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास-रजत-नग-पगतल में
पीयूष-स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुंदर समतल में

छायावादी कवि ने युग-युग से उपेक्षित नारी को सदियों की कारा से मुक्त करने का स्वर अलापा। छायावादी कवि कह उठता है - 'मुक्त करो नारी को, युग-युग की कारा से बंदिनी नारी को।'

नि:संदेह छायावाद ने नारी को मानवीय सहृदयता के साथ अंकित किया है। पंत की प्रसिद्ध पंक्ति है -'देवि मां सहचरि प्राण!!!' प्रसाद ने नारी को आदर्श श्रद्धा के रूप में देखा जो रागात्मक वृत्ति की प्रतीक है और मनुष्य को मंगल एवं श्रेय के पथ पर ले जाने वाली है। निराला नारी की यथार्थ स्थिति को काफी पहचान कर उसे चित्रित करते हैं। उन्होंने विधवा को इष्ट देव के मंदिर की पूजा कहा। इलाहाबाद के पथ पर तोड़ती हुई मजदूरनी का चित्र खिंचा, तुलसी की पत्नी रत्नावली का चित्रण रीतिकालीन नारी विषयक धारणा को तोड़नेवाली के रूप में किया।

9. आदर्शवाद—छायावाद में आंतरिकता की प्रवृत्ति की प्रधानता है। उसमें चीजों के बाह्य स्थूल रूप चित्रण की प्रवृत्ति नहीं है। अपनी इस अंतर्मुखी प्रवृत्ति के कारण उनका दृष्टिकोण काव्य के भावजगत और शैली में आदर्शवादी रहा। उसे स्थूलता के चित्रण की बजाय अपनी अनुभूतियां अधिक यथार्थ लगी हैं। यही कारण है कि उसका काव्य संबंधी दृष्टिकोण कल्पनात्मक रहा और उसमें सुंदर तत्त्व की प्रधानता बनी रही। छायावादी कवि के इस आदर्शवादी, कल्पनात्मक दृष्टिकोण को उसके कला पक्ष में भी सहज ही देखा जा सकता है।

10. स्वच्छंदतावाद—छायावादी कवि ने अहंवादी होने के कारण विषय, भाव, कला, धर्म, दर्शन और समाज के सभी क्षेत्रों में स्वछंदतावादी प्रवृत्ति को अपनाया। उसे अपने हृदयोदगार को अभिव्यक्त करने के लिए किसी प्रकार का शास्त्रीय बंधन और रूढ़ियां स्वीकार नहीं हैं। भाव-क्षेत्र में भी उसने इसी क्रांति का प्रदर्शन किया। उसमें 'मैं' की शैली अपनाई, हालांकि उसके 'मैं' में समूचा समाज सन्निहित है। अब छायावादी कवि के लिए प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक दिशा का मार्ग उन्मुक्त था। छायावादी कवि के लिए कोई भी वस्तु काव्य-विषय बनने के लिए उपयुक्त थी। इसी स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के फलस्वरूप छायावादी काव्य में सौंदर्य और प्रेम चित्रण, प्रकृति-चित्रण, राष्ट्रप्रेम, रहस्यात्मकता, वेदना और करुणा, वैयक्तिक सुख-दु:ख, अतीत प्रेम, कलावाद, प्रतीकात्मकता और लाक्षणिकता, अभिव्यंजना आदि सभी प्रवृत्तियां मिलती हैं। उसे पुरानी पिटी-पिटाई राहों पर चलना अभिप्रेत नहीं है। संक्षेप में कह सकते हैं कि छायावाद वैयक्तिक रुचि-स्वातंर्त्य का युग है।

11. देश-प्रेम एवं राष्ट्रीय भावना—राष्ट्रीय जागरण की क्रोड़ में पलने-पनपने वाला स्वच्छंदतावादी छायावाद साहित्य यदि रहस्यात्मकता और राष्ट्र प्रेम की भावनाओं को साथ-साथ लेकर चला है, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। सच तो यह है कि राष्ट्रीय जागरण ने छायावाद के व्यक्तिवाद को असामाजिक पथों पर भटकने से बचा लिया। छायावादी कवि में आंतरिकता की कितनी भी प्रधानता क्यों न हो वह अपने युग से निश्चित रूप से प्रभावित हुआ। यही कारण है कि जयशंकर प्रसाद पुकार उठते हैं -

अरुण यह मधुमय देश हमारा ...

या

हिमाद्रि तुंगश्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती

माखन लाल चतुर्वेदी कह उठते हैं –
मुझे तोड़ लेना वनमाली
उस पथ पर तुम देना फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक।

12. प्रतीकात्मकता –प्रतीकात्मकता छायावादियों के काव्य की कला पक्ष की प्रमुख विशेषता है। प्रकृति पर सर्वत्र मानवीय भावनाओं का आरोप किया गया और उसका संवेदनात्मक रूप में चित्रण किया गया, इससे यह स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व से विहीन हो गई और उसमें प्रतीकात्मकता का व्यवहार किया गया। उदाहरणार्थ, फूल सुख के अर्थ में, शूल दुख के अर्थ में, उषा प्रफुल्लता के अर्थ में, संध्या उदासी के अर्थ में, झंझा–झकोर गर्जन मानसिक द्वन्द्व के अर्थ में, नीरद माला नाना भावनाओं के अर्थ में प्रयुक्त हुए। दार्शनिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना एवं प्रेम की सूक्ष्मातिसूक्ष्म दशाओं के अंकन में भी इस प्रतीकात्मकता को देखा जा सकता है।

13. चित्रात्मक भाषा एवं लाक्षणिक पदावली–अन्य अनुपम विशिष्टताओं के अतिरिक्त केवल चित्रात्मक भाषा के कारण हिंदी वांग्मय में छायावादी काव्य को स्वतंत्र काव्य धारा माना जा सकता है। कविता के लिए चित्रात्मक भाषा की अपेक्षा की जाती है और इसी गुण के कारण उसमें बिम्बग्राहिता आती है। छायावादी कवि इस कला में परम विदग्ध हैं।' छायावादी काव्य में प्रसाद ने यदि प्रकृति तत्त्व को मिलाया, निराला ने उसे मुक्तक छंद दिया, पंत ने शब्दों को खराद पर चढ़ाकर सुड़ौल और सरस बनाया तो महादेवी ने उसमें प्राण डाले, उसकी भावात्मकता को समृद्ध किया।' प्रसाद की निम्नांकित पंक्तियों में भाषा की चित्रात्मकता की छटा देखते ही बनती है,–

शशि मुख पर घूंघट डाले, अंचल में दीप छिपाए।
जीवन की गोधूलि में, कौतूहल से तुम आए।

छायावादी कवि ने सीधी सादी भाव संबंधित भाषा से लेकर लाक्षणिक और अप्रस्तुत–विधानों से युक्त चित्रमयी भाषा तक का प्रयोग किया और कदाचित इस क्षेत्र में उसने सर्वाधिक मौलिकता का प्रदर्शन किया। छायावादी कवि ने परम्परा–प्राप्त उपमानों से संतुष्ट न होकर नवीन उपमानों की उद्‌भावना की। इसमें अप्रस्तुत–विधान और अभिव्यंजना–शैली में शतश – नवीन प्रयोग किए। मूर्त में अमूर्त का विधान उसकी कला का विशेष अंग बना। निराला जी

विधवा का चित्रण करते हुए लिखते हैं- 'वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी'। यही कारण है कि छायावादी काव्यधारा के पर्याप्त विरुद्ध लिखने वाले आलोचक रामचंद्र शुक्ल को भी लिखना पड़ गया कि 'छायावाद की शाखा के भितर धीरे-धीरे काव्य शैली का बहुत अच्छा विकास हुआ, इसमें संदेह नहीं।' इसमें भावावेश की आकुल व्यंजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त-प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता,विरोध चमत्कार, कोमल पद विन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप संगठित करने वाली प्रचुर सामग्री दिखाई पड़ी। उन्होंने पंत काव्य के कुछ उदाहरण भी उपन्यस्त किए -'धूल की ढेरी में अनजान। छिपे हैं मेरे मधुमय गान। मर्म पीड़ा के हास। कौन तुम अतुल अरूप अनाम।'

14. गेयता—छायावादी कवि केवल साहित्यिक ही नहीं वरन संगीत का भी कुशल ज्ञाता है। छायावाद का काव्य छंद और संगीत दोनों दृष्टियों से उच्च कोटि का है। इसमें प्राचीन छंदों के प्रयोग के साथ-साथ नवीन छंदों का भी निर्माण किया गया। इसमें मुक्तक छंद और अतुकांत कविताएं भी लिखी गईं। छायावादी कवि प्रणय, यौवन और सौंदर्य का कवि है। गीति-शैली उसके गृहीत विषय के लिए उपयुक्त थी। गीति-काव्य के सभी गुण-संक्षिप्तता, तीव्रता, आत्माभिव्यंजना, भाषा की मसृणता आदि उपलब्ध होते हैं। गीति-काव्य के लिए सौंदर्य-वृत्ति और स्वानुभूति के गुणों का होना आवश्यक है, सौभाग्य से सारी बातें छायावादी कवियों में मिलती हैं। दूसरी एक और बात भी है कि आधुनिक युग गीति-काव्य के लिए जितना उपयुक्त है उतना प्रबंध-काव्यों के लिए नहीं। छायावादी साहित्य में, प्रगीत, खंड काव्य और प्रबंध काव्य भी लिखे गए और वीर गीति,संबोध गीति, शोकगीति, व्यंग्य गीति आदि काव्य के अन्य रूप विधानों का प्रयोग किया गया। छायावादी कवियों की भाषा और छंद केवल बुद्धिविलास, वचन भंगिमा, कौशल या कौतुक वृत्ति से प्रेरित नहीं रहा बल्कि उनकी कविता में भाषा भावों का अनुसरण करती दीखती है और अभिव्यंजना अनुभूति का।

15. अलंकार-विधान—अलंकार योजना में प्राचीन अलंकारों के अतिरिक्त अंग्रेजी साहित्य के दो नवीन अलंकारों-मानवीकरण तथा विशेषणविपर्यय का भी अच्छा उपयोग किया गया है। प्राकृतिक घटनाओं प्रात:,संध्या, झंझा, बादल और प्राकृतिक चीजों सूर्य,चंद्रमा आदि पर जहां मानवीय भावनाओं का आरोप किया गया है वहां मानवीकरण है। विशेषण विपर्यय में विशेषण का जो स्थान अभिधावृत्ति के अनुसार निश्चित है, उसे हटाकर लक्षणा द्वारा दूसरी जगह आरोप किया जाता है। पंत ने बच्चों के तुतले भय का प्रयोग उनकी तुतली बोली में

व्यंजित भय के लिए किया है। इसी प्रकार 'तुम्हारी आंखों का बचपन खेलता जब अल्हड़ खेल।' छायावादी कवि ने अमूर्त को मूर्त और मूर्त को अमूर्त रूप में चित्रित करने के लिए अनेक नवीन उपमानों की उद्‌भावना की है, जैसे – 'कीर्ति किरण सी नाच रही है' तथा 'बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।' इसके अतिरिक्त उपमा, रूपक, उल्लेख, संदेह, विरोधाभास, रूपकातिशयोक्ति तथा व्यतिरेक आदि अलंकारों का भी सुंदर प्रयोग किया गया है।

16. कला कला के लिए – स्वातंत्र्य तथा आत्माभिव्यक्ति के अधिकार की भावना के परिणामस्वरूप छायावादी काव्य में 'कला कला के लिए' के सिद्धांत का अनुपालन रहा है। वस्तु-चयन तथा उसके प्रदर्शन कार्य में कवि ने पूर्ण स्वतंत्रता से काम लिया है। उसे समाज तथा उसकी नैतिकता की तनिक भी चिंता नहीं है। यही कारण है कि उसके काव्य में 'सत्' और 'शिव' की अपेक्षा 'सुंदर' की प्रधानता रही है। छायावादी काव्य इस 'कला कला के लिए' के सिद्धांत में पलायन और प्रगति दोनों सन्निहित हैं। एक ओर अंतर्मुखी प्रवृत्ति के कारण जहां जन-जीवन से कुछ उदासीनता है तो दूसरी ओर काव्य और समाज में मिथ्या रूढ़ियों के प्रति सबल विद्रोह भी। अतः छायावाद पर केवल पलायनवाद का दोष लगाना न्याय संगत नहीं होगा।

अंततः डॉ. नगेन्द्र ने इस साहित्य की समृद्धि की समता भक्ति साहित्य से की है। 'इस तथ्य से कतई इनकार नहीं किया जा सकता कि भाषा, भावना एवं अभिव्यक्ति-शिल्प की समृद्धि की दृष्टि से छायावादी काव्य अजोड़ है। विशुद्ध अनुभूतिपरक कवित्वमयता की दृष्टि से भी इसकी तुलना अन्य किसी युग के साहित्य से नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से भक्ति काल के बाद आधुनिक काल का यह तृतीय चरण हिंदी साहित्य के इतिहास का दूसरा स्वर्ण-युग कहकर रेखांकित किया जा सकता है। इस कविता का गौरव अक्षय है, उसकी समृद्धि की समता केवल भक्ति काव्य ही कर सकता है।'

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद (30 जनवरी 1889 – 15 नवंबर 1937), हिन्दी कवि, नाटककार, उपन्यासकार तथा निबन्धकार थे। वे हिन्दी के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। उन्होंने हिन्दी काव्य में एक तरह से छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में न केवल कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई, बल्कि जीवन के सूक्ष्म एवं व्यापक आयामों के

चित्रण की शक्ति भी संचित हुई और कामायनी तक पहुँचकर वह काव्य प्रेरक शक्तिकाव्य के रूप में भी प्रतिष्ठित हो गया। बाद के प्रगतिशील एवं नई कविता दोनों धाराओं के प्रमुख आलोचकों ने उसकी इस शक्तिमत्ता को स्वीकृति दी। इसका एक अतिरिक्त प्रभाव यह भी हुआ कि खड़ीबोली हिन्दी काव्य की निर्विवाद सिद्ध भाषा बन गयी।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में इनके कृतित्त्व का गौरव अक्षुण्ण है। वे एक युगप्रवर्तक लेखक थे जिन्होंने एक ही साथ कविता, नाटक, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में हिंदी को गौरवान्वित होने योग्य कृतियाँ दीं। कवि के रूप में वे निराला, पन्त, महादेवी के साथ छायावाद के प्रमुख स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं, नाटक लेखन में भारतेन्दु के बाद वे एक अलग धारा बहाने वाले युगप्रवर्तक नाटककार रहे जिनके नाटक आज भी पाठक न केवल चाव से पढ़ते हैं, बल्कि उनकी अर्थगर्भिता तथा रंगमंचीय प्रासंगिकता भी दिनानुदिन बढ़ती ही गयी है। इस दृष्टि से उनकी महत्ता पहचानने एवं स्थापित करने में वीरेन्द्र नारायण, शांता गाँधी, सत्येन्द्र तनेजा एवं अब कई दृष्टियों से सबसे बढ़कर महेश आनन्द का प्रशंसनीय ऐतिहासिक योगदान रहा है। इसके अलावा कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में भी उन्होंने कई यादगार कृतियाँ दीं। विविध रचनाओं के माध्यम से मानवीय करुणा और भारतीय मनीषा के अनेकानेक गौरवपूर्ण पक्षों का उद्घाटन। 48 वर्षो के छोटे से जीवन में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास और आलोचनात्मक निबंध आदि विभिन्न विधाओं में रचनाएँ की।

जीवन परिचय

प्रसाद जी का जन्म माघ शुक्ल 10, संवत् 1946 वि. (तदनुसार 30 जनवरी 1889 ई. दिन-गुरुवार) को काशी के सरायगोवर्धन में हुआ। इनके पितामह बाबू शिवरतन साहू दान देने में प्रसिद्ध थे और इनके पिता बाबू देवीप्रसाद जी कलाकारों का आदर करने के लिये विख्यात थे। इनका काशी में बड़ा सम्मान था और काशी की जनता काशीनरेश के बाद 'हर हर महादेव' से बाबू देवीप्रसाद का ही स्वागत करती थी। किशोरावस्था के पूर्व ही माता और बड़े भाई का देहावसान हो जाने के कारण 17 वर्ष की उम्र में ही प्रसाद जी पर आपदाओं का पहाड़ ही टूट पड़ा। कच्ची गृहस्थी, घर में सहारे के रूप में केवल विधवा भाभी, कुटुबिंयों, परिवार से संबद्ध अन्य लोगों का संपत्ति हड़पने का षड्यंत्र, इन सबका सामना उन्होंने धीरता और

गंभीरता के साथ किया। प्रसाद जी की प्रारंभिक शिक्षा काशी में क्वींस कालेज में हुई, किंतु बाद में घर पर इनकी शिक्षा का व्यापक प्रबंध किया गया, जहाँ संस्कृत, हिंदी, उर्दू, तथा फारसी का अध्ययन इन्होंने किया। दीनबंधु ब्रह्मचारी जैसे विद्वान् इनके संस्कृत के अध्यापक थे। इनके गुरुओं में 'रसमय सिद्ध' की भी चर्चा की जाती है।

घर के वातावरण के कारण साहित्य और कला के प्रति उनमें प्रारंभ से ही रुचि थी और कहा जाता है कि नौ वर्ष की उम्र में ही उन्होंने 'कलाधर' के नाम से व्रजभाषा में एक सवैया लिखकर 'रसमय सिद्ध' को दिखाया था। उन्होंने वेद, इतिहास, पुराण तथा साहित्य शास्त्र का अत्यंत गंभीर अध्ययन किया था। वे बाग-बगीचे तथा भोजन बनाने के शौकीन थे और शतरंज के खिलाड़ी भी थे। वे नियमित व्यायाम करनेवाले, सात्विक खान पान एवं गंभीर प्रकृति के व्यक्ति थे। वे नागरीप्रचारिणी सभा के उपाध्यक्ष भी थे। क्षय रोग से नवम्बर 15, 1937 (दिन-सोमवार) को प्रातःकाल (उम्र 47) उनका देहांत काशी में हुआ।

कृतियाँ

काव्य

प्रसाद की काव्य रचनाएँ दो वर्गो में विभक्त है—काव्यपथ अनुसंधान की रचनाएँ और रससिद्ध रचनाएँ। आँसू, लहर तथा कामायनी दूसरे वर्ग की रचनाएँ हैं। उन्होंने काव्यरचना ब्रजभाषा में आरम्भ की और धीर-धीरे खड़ी बोली को अपनाते हुए इस भाँति अग्रसर हुए कि खड़ी बोली के मूर्धन्य कवियों में उनकी गणना की जाने लगी और वे युगवर्तक कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

कानन कुसुम
महाराणा का महत्व
झरना(1918)
आंसू
लहर
कामायनी 1935
प्रेम पथिक

उन्होंने हिंदी काव्य में छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई और वह काव्य की सिद्ध भाषा बन गई। उनकी सर्वप्रथम छायावादी रचना 'खोलो द्वार' 1914 ई. में इंदु में प्रकाशित हुई। वे छायावाद के प्रतिष्ठापक ही नहीं अपितु छायावादी पद्धति पर सरस संगीतमय गीतों के लिखनेवाले श्रेष्ठ कवि भी हैं। उन्होंने हिंदी में 'करुणालय' द्वारा गीत नाट्य का भी आरंभ किया। उन्होंने भिन्न तुकांत काव्य लिखने के लिये मौलिक छंदचयन किया और अनेक छंद का संभवत: उन्होंने सबसे पहले प्रयोग किया। उन्होंने नाटकीय ढंग पर काव्य-कथा-शैली का मनोवैज्ञानिक पथ पर विकास किया। साथ ही कहानी कला की नई टेकनीक का संयोग काव्यकथा से कराया। प्रगीतों की ओर विशेष रूप से उन्होंने गद्य साहित्य को संपुष्ट किया और नीरस इतिवृत्तात्मक काव्यपद्धति को भावपद्धति के सिंहासन पर स्थापित किया।

काव्यक्षेत्र में प्रसाद की कीर्ति का मूलाधार 'कामायनी' है। खड़ी बोली का यह अद्वितीय महाकव्य मनु और श्रद्धा को आधार बनाकर रचित मानवता को विजयिनी बनाने का संदेश देता है। यह रूपक कथाकाव्य भी है जिसमें मन, श्रद्धा और इड़ा (बुद्धि) के योग से अखंड आनंद की उपलब्धि का रूपक प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर संयोजित किया गया है। उनकी यह कृति छायावाद ओर खड़ी बोली की काव्यगरिमा का ज्वलंत उदाहरण है। सुमित्रनंदन पंत इसे 'हिंदी में ताजमहल के समान' मानते हैं। शिल्पविधि, भाषासौष्ठव एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से इसकी तुलना खड़ी बोली के किसी भी काव्य से नहीं की जा सकती है।

कहानी

कथा के क्षेत्र में प्रसाद जी आधुनिक ढंग की कहानियों के आरंभयिता माने जाते हैं। सन् 1912 ई. में 'इंदु' में उनकी पहली कहानी 'ग्राम' प्रकाशित हुई। उन्होंने कुल 72 कहानियाँ लिखी हैं। कहानी संग्रह

छाया
प्रतिध्वनि
आकाशदीप
आंधी
इन्द्रजाल

उनकी अधिकतर कहानियों में भावना की प्रधानता है, किंतु उन्होंने यथार्थ की दृष्टि से भी कुछ श्रेष्ठ कहानियाँ लिखी हैं। उनकी वातावरणप्रधान कहानियाँ अत्यंत सफल हुई हैं। उन्होंने ऐतिहासिक, प्रागैतिहासिक एवं पौराणिक कथानकों पर मौलिक एवं कलात्मक कहानियाँ लिखी हैं। भावना-प्रधान प्रेमकथाएँ, समस्यामूलक कहानियाँ लिखी हैं। भावना प्रधान प्रेमकथाएँ, समस्यामूलक कहानियाँ, रहस्यवादी, प्रतीकात्मक और आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उत्तम कहानियाँ, भी उन्होंने लिखी हैं। ये कहानियाँ भावनाओं की मिठास तथा कवित्व से पूर्ण हैं।

प्रसाद जी भारत के उन्नत अतीत का जीवित वातावरण प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त थे। उनकी कितनी ही कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें आदि से अंत तक भारतीय संस्कृति एवं आदर्शो की रक्षा का सफल प्रयास किया गया है। उनकी कुछ श्रेष्ठ कहानियों के नाम हैं–आकाशदीप, गुंडा, पुरस्कार, सालवती, स्वर्ग के खंडहर में आँधी, इंद्रजाल, छोटा जादूगर, बिसाती, मधुआ, विरामचिह्न, समुद्रसंतरणय अपनी कहानियों में जिन अमर चरित्रों की उन्होंने सृष्टि की है, उनमें से कुछ हैं चंपा, मधुलिका, लैला, इरावती, सालवती और मधुआ का शराबी, गुंडा का नन्हकूसिंह और घीसू जो अपने अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं।

उपन्यास

प्रसाद ने तीन उपन्यास लिखे हैं। 'कंकाल', में नागरिक सभ्यता का अंतर यथार्थ उद्घाटित किया गया है। 'तितली' में ग्रामीण जीवन के सुधार के संकेत हैं। प्रथम यथार्थवादी उन्यास हैं, दूसरे में आदर्शोन्मुख यथार्थ है। इन उपन्यासों के द्वारा प्रसाद जी हिंदी में यथार्थवादी उपन्यास लेखन के क्षेत्र में अपनी गरिमा स्थापित करते हैं। 'इरावती' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया इनका अधूरा उपन्यास है, जो रोमांस के कारण ऐतिहासिक रोमांस के उपन्यासों में विशेष आदर का पात्र है। इन्होंने अपने उपन्यासों में ग्राम, नगर, प्रकृति और जीवन का मार्मिक चित्रण किया है, जो भावुकता और कवित्व से पूर्ण होते हुए भी प्रौढ़ लोगों की शैल्पिक जिज्ञासा का समाधान करता है।

नाटक

प्रसाद ने आठ ऐतिहासिक, तीन पौराणिक और दो भावात्मक, कुल 13 नाटकों की सर्जना की। 'कामना' और 'एक घूँट' को छोड़कर ये नाटक मूलतः इतिहास पर आधृत हैं। इनमें महाभारत से लेकर हर्ष के समय तक के इतिहास

से सामग्री ली गई है। वे हिंदी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं। उनके नाटकों में सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना इतिहास की भित्ति पर संस्थित है।

स्कंदगुप्त
चंद्रगुप्त
ध्रुवस्वामिनी
जन्मेजय का नाग यज्ञ
राज्यश्री
कामना
एक घूंट

जयशंकर प्रसाद ने अपने दौर के पारसी रंगमंच की परंपरा को अस्वीकारते हुए भारत के गौरवमय अतीत के अनमोल चरित्रों को सामने लाते हुए अविस्मरनीय नाटकों की रचना की। उनके नाटक स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त आदि में स्वर्णिम अतीत को सामने रखकर मानों एक सोये हुए देश को जागने की प्रेरणा दी जा रही थी। उनके नाटकों में देशप्रेम का स्वर अत्यंत दर्शनीय है और इन नाटकों में कई अत्यंत सुंदर और प्रसिद्ध गीत मिलते हैं। 'हिमाद्रि तुंग शृंग से', 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' जैसे उनके नाटकों के गीत सुप्रसिद्ध रहे हैं।

इनके नाटकों पर अभिनेय न होने का आरोप है। आक्षेप लगता रहा है कि वे रंगमंच के हिसाब से नहीं लिखे गए है जिसका कारण यह बताया जाता है कि इनमें काव्यतत्त्व की प्रधानता, स्वगत कथनों का विस्तार, गायन का बीच बीच में प्रयोग तथा दृश्यों का त्रुटिपूर्ण संयोजन है। किंतु उनके अनेक नाटक सफलतापूर्वक अभिनीत हो चुके हैं। उनके नाटकों में प्राचीन वस्तुविन्यास और रसवादी भारतीय परंपरा तो है ही, साथ ही पारसी नाटक कंपनियों, बँगला तथा भारतेंदुयुगीन नाटकों एवं शेक्सपियर की नाटकीय शिल्पविधि के योग से उन्होंने नवीन मार्ग ग्रहण किया है। उनके नाटकों के आरंभ और अंत में उनका अपना मौलिक शिल्प है, जो अत्यंत कलात्मक है। उनके नायक और प्रतिनायक दोनों चारित्रिक दृष्टि के गठन से अपनी विशेषता से मंडित हैं। इनकी नायिकाएँ भी नारीसुलभ गुणों से, प्रेम, त्याग, उत्सर्ग, भावुक उदारता से पूर्ण हैं। उन्होंने अपने नाटकों में जहाँ राजा, आचार्य, सैनिक, वीर और कूटनीतिज्ञ का चित्रण किया है वहीं ओजस्वी, महिमाशाली स्त्रियों और विलासिनी,

वासनामयी तथा उग्र नायिकाओं का भी चित्रण किया है। चरित्रचित्रण उनके अत्यंत सफल हैं। चरित्रचित्रण की दृष्टि से उन्होंने नाटकों में राजश्री एवं चाणक्य को अमर कर दिया है। नाटकों में इतिहास के आधार पर वर्तमान समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रस्तुत करते हुए वे मिलते हैं। किंतु गंभीर चिंतन के साथ स्वच्छंद काव्यात्मक दृष्टि उनके समाधान के मूल में है। कथोपकथन स्वाभाविक है, किंतु उनकी भाषा संस्कृतगर्भित है। नाटकों में दार्शनिक गंभीतरता का बाहुल्य है पर वह गद्यात्मक न होकर सरस है। उन्होंने कुछ नाटकों में स्वगत का भी प्रयोग किया है, किंतु ऐसे नाटक केवल चार हैं। भारतीय नाट्य परंपरा में विश्वास करने के कारण उन्होंने नाट्यरूपक 'कामना' के रूप में प्रस्तुत किया। ये नाटक प्रभाव की एकता लाने में पूर्ण सफल हैं। अपनी कुछ त्रुटियों के बावजूद प्रसाद जी नाटककार के रूप में हिंदी में अप्रतिम हैं।

निबंध

प्रसाद ने प्रारंभ में समय-समय पर 'इंदु' में विविध विषयों पर सामान्य निबंध लिखे। बाद में उन्होंने शोधपरक ऐतिहासिक निबंध, यथारू सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य, प्राचीन आर्यवर्त और उसका प्रथम सम्राट् आदि- भी लिखे हैं। ये उनकी साहित्यिक मान्यताओं की विश्लेषणात्मक वैज्ञानिक भूमिका प्रस्तुत करते हैं। विचारों की गहराई, भावों की प्रबलता तथा चिंतन और मनन की गंभीरता के ये जाज्वल्य प्रमाण हैं।

पुरस्कार

जयशंकर प्रसाद को 'कामायनी' पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ था।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (21 फरवरी, 1896 - 15 अक्टूबर, 1961) हिन्दी कविता के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों, में से एक माने जाते हैं। वे जयशंकर प्रसाद, सुमित्रनंदन पंत और महादेवी वर्मा के साथ हिन्दी साहित्य में छायावाद के प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं। उन्होंने कहानियाँ, उपन्यास और निबंध भी लिखे हैं, किन्तु उनकी ख्याति विशेषरुप से कविता के कारण ही है।

जीवन परिचय

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म बंगाल की महिषादल रियासत (जिला मेदिनीपुर) में माघ शुक्ल 11, संवत् 1955, तदनुसार 21 फरवरी, सन् 1899 में हुआ था। वसंत पंचमी पर उनका जन्मदिन मनाने की परंपरा 1930 में प्रारंभ हुई। उनका जन्म मंगलवार को हुआ था। जन्म-कुण्डली बनाने वाले पंडित के कहने से उनका नाम सुर्जकुमार रखा गया। उनके पिता पंडित रामसहाय तिवारी उन्नाव (बैसवाड़ा) के रहने वाले थे और महिषादल में सिपाही की नौकरी करते थे। वे मूल रूप से उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के गढ़ाकोला नामक गाँव के निवासी थे।

निराला की शिक्षा हाई स्कूल तक हुई। बाद में हिन्दी संस्कृत और बाङ्ला का स्वतंत्र अध्ययन किया। पिता की छोटी-सी नौकरी की असुविधाओं और मान-अपमान का परिचय निराला को आरम्भ में ही प्राप्त हुआ। उन्होंने दलित-शोषित किसान के साथ हमदर्दी का संस्कार अपने अबोध मन से ही अर्जित किया। तीन वर्ष की अवस्था में माता का और बीस वर्ष का होते-होते पिता का देहांत हो गया। अपने बच्चों के अलावा संयुक्त परिवार का भी बोझ निराला पर पड़ा। पहले महायुद्ध के बाद जो महामारी फैली उसमें न सिर्फ पत्नी मनोहरा देवी का, बल्कि चाचा, भाई और भाभी का भी देहांत हो गया। शेष कुनबे का बोझ उठाने में महिषादल की नौकरी अपर्याप्त थी। इसके बाद का उनका सारा जीवन आर्थिक-संघर्ष में बीता। निराला के जीवन की सबसे विशेष बात यह है कि कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उन्होंने सिद्धांत त्यागकर समझौते का रास्ता नहीं अपनाया, संघर्ष का साहस नहीं गंवाया। जीवन का उत्तरार्द्ध इलाहाबाद में बीता। वहीं दारागंज मुहल्ले में स्थित रायसाहब की विशाल कोठी के ठीक पीछे बने एक कमरे में 15 अक्टूबर 1961 को उन्होंने अपनी इहलीला समाप्त की।

कार्यक्षेत्र

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की पहली नियुक्ति महिषादल राज्य में ही हुई। उन्होंने 1918 से 1922 तक यह नौकरी की। उसके बाद संपादन, स्वतंत्र लेखन और अनुवाद कार्य की ओर प्रवृत्त हुए। 1922 से 1923 के दौरान कोलकाता से प्रकाशित 'समन्वय' का संपादन किया, 1923 के अगस्त से मतवाला के संपादक मंडल में कार्य किया। इसके बाद लखनऊ में गंगा पुस्तक माला

कार्यालय में उनकी नियुक्ति हुई जहाँ वे संस्था की मासिक पत्रिका सुधा से 1935 के मध्य तक संबद्ध रहे। 1935 से 1940 तक का कुछ समय उन्होंने लखनऊ में भी बिताया। इसके बाद 1942 से मृत्यु पर्यन्त इलाहाबाद में रह कर स्वतंत्र लेखन और अनुवाद कार्य किया। उनकी पहली कविता जन्मभूमि प्रभा नामक मासिक पत्र में जून 1920 में, पहला कविता संग्रह 1923 में अनामिका नाम से, तथा पहला निबंध बंग भाषा का उच्चारण अक्टूबर 1920 में मासिक पत्रिका सरस्वती में प्रकाशित हुआ।

अपने समकालीन अन्य कवियों से अलग उन्होंने कविता में कल्पना का सहारा बहुत कम लिया है और यथार्थ को प्रमुखता से चित्रित किया है। वे हिन्दी में मुक्तछंद के प्रवर्तक भी माने जाते हैं। 1930 में प्रकाशित अपने काव्य संग्रह परिमल की भूमिका में वे लिखते हैं-

मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्म के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना है। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह दूसरों के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं फिर भी स्वतंत्र। इसी तरह कविता का भी हाल है।

लेखनकार्य

निराला ने 1920 ई. के आसपास से लेखन कार्य आरंभ किया। उनकी पहली रचना 'जन्मभूमि' पर लिखा गया एक गीत था। लंबे समय तक निराला की प्रथम रचना के रूप में प्रसिद्ध 'जूही की कली' शीर्षक कविता, जिसका रचनाकाल निराला ने स्वयं 1916 ई. बतलाया था, वस्तुतः 1921 ई. के आसपास लिखी गयी थी तथा 1922 ई. में पहली बार प्रकाशित हुई थी। कविता के अतिरिक्त कथासाहित्य तथा गद्य की अन्य विधाओं में भी निराला ने प्रभूत मात्र में लिखा है।

प्रकाशित कृतियाँ

काव्यसंग्रह
अनामिका (1923)
परिमल (1930)
गीतिका (1936)

अनामिका (द्वितीय) (1939) (इसी संग्रह में सरोज स्मृति और राम की शक्तिपूजा जैसी प्रसिद्ध कविताओं का संकलन है।)

तुलसीदास (1939)

कुकुरमुत्ता (1942)

अणिमा (1943)

बेला (1946)

नये पत्ते (1946)

अर्चना(1950)

आराधना (1953)

गीत कुंज (1954)

सांध्य काकली

अपरा (संचयन)

उपन्यास

अप्सरा (1931)

अलका (1933)

प्रभावती (1936)

निरुपमा (1936)

कुल्ली भाट (1938-39)

बिल्लेसुर बकरिहा (1942)

चोटी की पकड़ (1946)

काले कारनामे (1950) 'अपूर्ण'

चमेली (अपूर्ण)

इन्दुलेखा (अपूर्ण)

कहानी संग्रह

लिली (1934)

सखी (1935)

सुकुल की बीवी (1941)

चतुरी चमार (1945) 'सखी' संग्रह की कहानियों का ही इस नये नाम से पुनर्प्रकाशन।,

देवी (1948) 'यह संग्रह वस्तुत: पूर्व प्रकाशित संग्रहों से संचयन है। इसमें एकमात्र नयी कहानी 'जान की !' संकलित है।

निबन्ध-आलोचना

रवीन्द्र कविता कानन (1929)
प्रबंध पद्म (1934)
प्रबंध प्रतिमा (1940)
चाबुक (1942)
चयन (1957)
संग्रह (1963)

पुराण कथा

महाभारत (1939)
रामायण की अन्तर्कथाएँ (1956)

बालोपयोगी साहित्य

भक्त ध्रुव (1926)
भक्त प्रहलाद (1926)
भीष्म (1926)
महाराणा प्रताप (1927)
सीखभरी कहानियाँ (ईस, की नीतिकथाएँ) 1969,

अनुवाद

रामचरितमानस (विनय-भाग)-1948 (खड़ीबोली हिन्दी में पद्यानुवाद)
आनंद मठ (बांगला से गद्यानुवाद)
विष वृक्ष
कृष्णकांत का वसीयतनामा
कपालकुंडला
दुर्गेश नन्दिनी
राज सिंह
राजरानी

देवी चौधरानी
युगलांगुलीय
चन्द्रशेखर
रजनी
श्रीरामकृष्णवचनामृत (तीन खण्डों में)
परिव्राजक
भारत में विवेकानंद
राजयोग (अंशानुवाद)

रचनावली

निराला रचनावली नाम से 8 खण्डों में पूर्व प्रकाशित एवं अप्रकाशित सम्पूर्ण रचनाओं का सुनियोजित प्रकाशन (प्रथम संस्करण-1983)।

समालोचना

इस अनुभाग में सन्दर्भ या स्रोत नहीं दिया गया है।

कृपया विश्वसनीय सन्दर्भ या स्रोत जोड़कर इस लेख में सुधार करें। स्रोतहीन सामग्री ज्ञानकोश के उपयुक्त नहीं है। इसे हटाया जा सकता है। (जनवरी 2015)

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की काव्यकला की सबसे बड़ी विशेषता है चित्रण-कौशल। आंतरिक भाव हो या बाह्य जगत के दृश्य-रूप, संगीतात्मक ध्वनियां हो या रंग और गंध, सजीव चरित्र हों या प्राकृतिक दृश्य, सभी अलग-अलग लगनेवाले तत्त्वों को घुला-मिलाकर निराला ऐसा जीवंत चित्र उपस्थित करते हैं कि पढ़ने वाला उन चित्रों के माध्यम से ही निराला के मर्म तक पहुँच सकता है। निराला के चित्रों में उनका भावबोध ही नहीं, उनका चिंतन भी समाहित रहता है। इसलिए उनकी बहुत-सी कविताओं में दार्शनिक गहराई उत्पन्न हो जाती है। इस नए चित्रण-कौशल और दार्शनिक गहराई के कारण अक्सर निराला की कविताऐं कुछ जटिल हो जाती हैं, जिसे न समझने के नाते विचारक लोग उन पर दु:हता आदि का आरोप लगाते हैं। उनके किसान-बोध ने ही उन्हें छायावाद की भूमि से आगे बढ़कर यथार्थवाद की नई भूमि निर्मित करने की प्रेरणा दी। विशेष स्थितियों, चरित्रों और दृश्यों को देखते हुए उनके मर्म को पहचानना और उन विशिष्ट वस्तुओं को ही चित्रण का विषय बनाना, निराला

के यथार्थवाद की एक उल्लेखनीय विशेषता है। निराला पर अध्यात्मवाद और रहस्यवाद जैसी जीवन-विमुख प्रवृत्तियों का भी असर है। इस असर के चलते वे बहुत बार चमत्कारों से विजय प्राप्त करने और संघर्षों का अंत करने का सपना देखते हैं। निराला की शक्ति यह है कि वे चमत्कार के भरोसे अकर्मण्य नहीं बैठ जाते और संघर्ष की वास्तविक चुनौती से आँखें नहीं चुराते। कहीं-कहीं रहस्यवाद के फेर में निराला वास्तविक जीवन-अनुभवों के विपरीत चलते हैं। हर ओर प्रकाश फैला है, जीवन आलोकमय महासागर में डूब गया है, इत्यादि ऐसी ही बातें हैं। लेकिन यह रहस्यवाद निराला के भावबोध में स्थायी नहीं रहता, वह क्षणभंगुर ही साबित होता है। अनेक बार निराला शब्दों, ध्वनियों आदि को लेकर खिलवाड़ करते हैं। इन खिलवाड़ों को कला की संज्ञा देना कठिन काम है। लेकिन सामान्यत: वे इन खिलवाड़ों के माध्यम से बड़े चमत्कारपूर्ण कलात्मक प्रयोग करते हैं। इन प्रयोगों की विशेषता यह है कि वे विषय या भाव को अधिक प्रभावशाली रूप में व्यक्त करने में सहायक होते हैं। निराला के प्रयोगों में एक विशेष प्रकार के साहस और सजगता के दर्शन होते हैं। यह साहस और सजगता ही निराला को अपने युग के कवियों में अलग और विशिष्ट बनाती है।

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा (26 मार्च1907-11 सितंबर1987) हिन्दी की सर्वाधिक प्रतिभावान कवयित्रियों में से हैं। वे हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों, में से एक मानी जाती हैं। आधुनिक हिन्दी की सबसे सशक्त कवयित्रियों में से एक होने के कारण उन्हें आधुनिक मीरा के नाम से भी जाना जाता है। कवि निराला ने उन्हें "हिन्दी के विशाल मन्दिर की सरस्वती" भी कहा है। महादेवी ने स्वतंत्रता के पहले का भारत भी देखा और उसके बाद का भी। वे उन कवियों में से एक हैं जिन्होंने व्यापक समाज में काम करते हुए भारत के भीतर विद्यमान हाहाकार, रुदन को देखा, परखा और करुण होकर अन्धकार को दूर करने वाली दृष्टि देने की कोशिश की। न केवल उनका काव्य बल्कि उनके सामाजसुधार के कार्य और महिलाओं के प्रति चेतना भावना भी इस दृष्टि से प्रभावित रहे। उन्होंने मन की पीड़ा को इतने स्नेह और शृंगार से सजाया कि दीपशिखा में वह जन-जन की पीड़ा के रूप में स्थापित हुई और उसने केवल पाठकों को ही नहीं समीक्षकों को भी गहराई तक प्रभावित किया।

उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी की कविता में उस कोमल शब्दावली का विकास किया जो अभी तक केवल बृजभाषा में ही संभव मानी जाती थी। इसके लिए उन्होंने अपने समय के अनुकूल संस्कृत और बांग्ला के कोमल शब्दों को चुनकर हिन्दी का जामा पहनाया। संगीत की जानकार होने के कारण उनके गीतों का नाद-सौंदर्य और पैनी उक्तियों की व्यंजना शैली अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने अध्यापन से अपने कार्यजीवन की शुरूआत की और अंतिम समय तक वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या बनी रहीं। उनका बाल-विवाह हुआ परंतु उन्होंने अविवाहित की भांति जीवन-यापन किया। प्रतिभावान कवयित्री और गद्य लेखिका महादेवी वर्मा साहित्य और संगीत में निपुण होने के साथ-साथ कुशल चित्रकार और सृजनात्मक अनुवादक भी थीं। उन्हें हिन्दी साहित्य के सभी महत्त्वपूर्ण पुरस्कार प्राप्त करने का गौरव प्राप्त है। भारत के साहित्य आकाश में महादेवी वर्मा का नाम ध्रुव तारे की भांति प्रकाशमान है। गत शताब्दी की सर्वाधिक लोकप्रिय महिला साहित्यकार के रूप में वे जीवन भर पूजनीय बनी रहीं। वर्ष 2007 उनकी जन्म शताब्दी के रूप में मनाया गया। 27 अप्रैल 1982 को भारतीय साहित्य में अतुलनीय योगदान के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से इन्हें सम्मानित किया गया था। गूगल ने इस दिवस की याद में वर्ष 2018 में गूगल डूडल के माध्यम से मनाया। महादेवी वर्मा पर आप महादेवी वर्मा जीवन परिचय लेख भी पढ़ सकते हे। गत शताब्दी की सर्वाधिक लोकप्रिय महिला साहित्यकार के रूप में वे जीवन भर बनी रहीं। वे भारत की 50 सबसे यशस्वी महिलाओं में भी शामिल हैं। महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान के बीच बचपन से मित्रता थी।

प्रारंभिक जीवन और परिवार

वर्मा का जन्म फर्रूख बाद, उत्तर प्रदेश के एक संपन्न परिवार में हुआ। इस परिवार में लगभग 200 वर्षों या सात पीढ़ियों के बाद महादेवी जी के रूप में पुत्री का जन्म हुआ था। अतः इनके बाबा गोविंद प्रसाद वर्मा हर्ष से झूम उठे और इन्हें घर की देवी- महादेवी माना और उन्होंने इनका नाम महादेवी रखा था। महादेवी जी के माता-पिता का नाम हेमरानी देवी और बाबू गोविन्द प्रसाद वर्मा था। श्रीमती महादेवी वर्मा की छोटी बहन और दो छोटे भाई थे। क्रमशः श्यामा देवी (श्रीमती श्यामा देवी सक्सेना धर्मपत्नी- डॉ. बाबूराम सक्सेना, भूतपूर्व विभागाध्यक्ष एवं उपकुलपति इलाहाबाद विश्वविद्यालय) श्री जगमोहन वर्मा एवं श्री मनमोहन वर्मा। महादेवी वर्मा एवं जगमोहन वर्मा शान्ति

एवं गम्भीर स्वभाव के तथा श्यामादेवी व मनमोहन वर्मा चंचल, शरारती एवं हठी स्वभाव के थे।

महादेवी वर्मा के हृदय में शैशवावस्था से ही जीव मात्र के प्रति करुणा थी, दया थी। उन्हें ठण्डक में कूँ कूँ करते हुए पिल्लों का भी ध्यान रहता था। पशु-पक्षियों का लालन-पालन और उनके साथ खेलकूद में ही दिन बिताती थीं। चित्र बनाने का शौक भी उन्हें बचपन से ही था। इस शौक की पूर्ति वे पृथ्वी पर कोयले आदि से चित्र उकेर कर करती थीं। उनके व्यक्तित्त्व में जो पीड़ा, करुणा और वेदना है, विद्रोहीपन है, अहं है, दार्शनिकता एवं आध्यात्मिकता है तथा अपने काव्य में उन्होंने जिन तरल सूक्ष्म तथा कोमल अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की है, इन सब के बीज उनकी इसी अवस्था में पड़ चुके थे और उनका अंकुरण तथा पल्लवन भी होने लगा था।

शिक्षा– वीएनएमसीबीएन महादेवी की शिक्षा 1912 में इंदौर के मिशन स्कूल से प्रारम्भ हुई साथ ही संस्कृत, अंग्रेजी, संगीत तथा चित्रकला की शिक्षा अध्यापकों द्वारा घर पर ही दी जाती रही। 1916 में विवाह के कारण कुछ दिन शिक्षा स्थगित रही। विवाहोपरान्त महादेवी जी ने 1919 में बाई का बाग स्थित क्रास्थवेट कॉलेज इलाहाबाद में प्रवेश लिया और कॉलेज के छात्रावास में रहने लगीं। महादेवी जी की प्रतिभा का निखार यहीं से प्रारम्भ होता है।

1921 में महादेवी जी ने आठवीं कक्षा में प्रान्त भर में प्रथम स्थान प्राप्त किया और कविता यात्रा के विकास की शुरुआत भी इसी समय और यहीं से हुई। वे सात वर्ष की अवस्था से ही कविता लिखने लगी थीं और 1925 तक जब अपनी मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी, वह एक सफल कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध हो चुकी थीं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कविताओं का प्रकाशन होने लगा था। पाठशाला में हिंदी अध्यापक से प्रभावित होकर ब्रजभाषा में समस्यापूर्ति भी करने लगीं। फिर तत्कालीन खड़ीबोली की कविता से प्रभावित होकर खड़ीबोली में रोला और हरिगीतिका छंदों में काव्य लिखना प्रारंभ किया। उसी समय माँ से सुनी एक करुण कथा को लेकर सौ छंदों में एक खंडकाव्य भी लिख डाला। कुछ दिनों बाद उनकी रचनाएँ तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं। विद्यार्थी जीवन में वे प्राय: राष्ट्रीय और सामाजिक जागृति संबंधी कविताएँ लिखती रहीं, जो लेखिका के ही कथनानुसार 'विद्यालय के वातावरण में ही खो जाने के लिए लिखी गई थीं। उनकी समाप्ति के साथ ही मेरी कविता का शैशव भी समाप्त हो गया।' मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के

पूर्व ही उन्होंने ऐसी कविताएँ लिखना शुरू कर दिया था, जिसमें व्यष्टि में समष्टि और स्थूल में सूक्ष्म चेतना के आभास की अनुभूति अभिव्यक्त हुई है। उनके प्रथम काव्य-संग्रह 'नीहार' की अधिकांश कविताएँ उसी समय की है।

परिचित और आत्मीय

महादेवी जैसे प्रतिभाशाली और प्रसिद्ध व्यक्तित्त्व का परिचय और पहचान तत्कालीन सभी साहित्यकारों और राजनीतिज्ञों से थी। वे महात्मा गांधी से भी प्रभावित रहीं। सुभद्रा कुमारी चौहान की मित्रता कॉलेज जीवन में ही जुड़ी थी। सुभद्रा कुमारी चौहान महादेवी जी का हाथ पकड़ कर सखियों के बीच में ले जाती और कहतीं- 'सुनो, ये कविता भी लिखती हैं।' पन्त जी के पहले दर्शन भी हिन्दू बोर्डिंग हाउस के कवि सम्मेलन में हुए थे और उनके घुँघराले बड़े बालों को देखकर उनको लड़की समझने की भ्रांति भी हुई थी। महादेवी जी गंभीर प्रकृति की महिला थीं लेकिन उनसे मिलने वालों की संख्या बहुत बड़ी थी। रक्षाबंधन, होली और उनके जन्मदिन पर उनके घर जमावड़ा-सा लगा रहता था। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला से उनका भाई-बहन का रिश्ता जगत प्रसिद्ध है। उनसे राखी बंधाने वालों में सुप्रसिद्ध साहित्यकार गोपीकृष्ण गोपेश भी थे। सुमित्रनंदन पंत को भी राखी बांधती थीं और सुमित्रनंदन पंत उन्हें राखी बांधते। इस प्रकार स्त्री-पुरुष की बराबरी की एक नई प्रथा उन्होंने शुरू की थी। वे राखी को रक्षा का नहीं स्नेह का प्रतीक मानती थीं। वे जिन परिवारों से अभिभावक की भांति जुड़ी रहीं उसमें गंगा प्रसाद पांडेय का नाम प्रमुख है, जिनकी पोती का उन्होंने स्वयं कन्यादान किया था। गंगा प्रसाद पांडेय के पुत्र रामजी पांडेय ने महादेवी वर्मा के अंतिम समय में उनकी बड़ी सेवा की। इसके अतिरिक्त इलाहाबाद के लगभग सभी साहित्यकारों और परिचितों से उनके आत्मीय संबंध थे।

वैवाहिक जीवन

नवाँ वर्ष पूरा होते-होते सन् 1916 में उनके बाबा श्री बाँके विहारी ने इनका विवाह बरेली के पास नबाव गंज कस्बे के निवासी श्री स्वरूप नारायण वर्मा से कर दिया, जो उस समय दसवीं कक्षा के विद्यार्थी थे। महादेवी जी का विवाह उस उम्र में हुआ जब वे विवाह का मतलब भी नहीं समझती थीं। बारात आयी तो बाहर भाग कर हम सबके बीच खड़े होकर बारात देखने लगे। व्रत रखने

को कहा गया तो मिठाई वाले कमरे में बैठ कर खूब मिठाई खाई। रात को सोते समय नाइन ने गोद में लेकर फेरे दिलवाये होंगे, हमें कुछ ध्यान नहीं है। प्रातः आँख खुली तो कपड़े में गाँठ लगी देखी तो उसे खोल कर भाग गए।'

महादेवी वर्मा पति-पत्नी सम्बंध को स्वीकार न कर सकीं। कारण आज भी रहस्य बना हुआ है। आलोचकों और विद्वानों ने अपने-अपने ढँग से अनेक प्रकार की अटकलें लगायी हैं। गंगा प्रसाद पाण्डेय के अनुसार- 'ससुराल पहुँच कर महादेवी जी ने जो उत्पात मचाया, उसे ससुराल वाले ही जानते हैं। रोना बस रोना। नई बालिका बहू के स्वागत समारोह का उत्सव फीका पड़ गया और घर में एक आतंक छा गया। फलतः ससुर महोदय दूसरे ही दिन उन्हें वापस लौटा गए।' पिता जी की मृत्यु के बाद श्री स्वरूप नारायण वर्मा कुछ समय तक अपने ससुर के पास ही रहे, पर पुत्री की मनोवृत्ति को देखकर उनके बाबू जी ने श्री वर्मा को इण्टर करवा कर लखनऊ मेडिकल कॉलेज में प्रवेश दिलाकर वहीं बोर्डिंग हाउस में रहने की व्यवस्था कर दी। जब महादेवी इलाहाबाद में पढ़ने लगीं तो श्री वर्मा उनसे मिलने वहाँ भी आते थे। किन्तु महादेवी वर्मा उदासीन ही बनी रहीं। विवाहित जीवन के प्रति उनमें विरक्ति उत्पन्न हो गई थी। इस सबके बावजूद श्री स्वरूप नारायण वर्मा से कोई वैमनस्य नहीं था। सामान्य स्त्री-पुरुष के रूप में उनके सम्बंध मधुर ही रहे। दोनों में कभी-कभी पत्राचार भी होता था। यदा-कदा श्री वर्मा इलाहाबाद में उनसे मिलने भी आते थे। एक विचारणीय तथ्य यह भी है कि श्री वर्मा ने महादेवी जी के कहने पर भी दूसरा विवाह नहीं किया। महादेवी जी का जीवन तो एक संन्यासिनी का जीवन था ही। उन्होंने जीवन भर 'खेत वस्त्र पहना, तख्त पर सोया और कभी शीशा नहीं देखा।

प्रसिद्धि के पथ पर

महादेवी वर्मा- माखनलाल चतुर्वेदी के साथ

1932 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. करने के बाद से उनकी प्रसिद्धि का एक नया युग प्रारंभ हुआ। भगवान बुद्ध के प्रति गहन भक्तिमय अनुराग होने के कारण और अपने बाल-विवाह के अवसाद को झेलने वाली महादेवी बौद्ध भिक्षुणी बनना चाहती थीं। कुछ समय बाद महात्मा गांधी के सम्पर्क और प्रेरणा से उनका मन सामाजिक कार्यों की ओर उन्मुख हो गया।

प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत साहित्य में एम. ए. करने के बाद प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या का पद संभाला और चाँद का नि:शुल्क संपादन किया। प्रयाग में ही उनकी भेंट रवीन्द्रनाथ ठाकुर से हुई और यहीं पर 'मीरा जयंती' का शुभारम्भ किया। कलकत्ता में जापानी कवि योन नागूची के स्वागत समारोह में भाग लिया और शान्ति निकेतन में गुरुदेव के दर्शन किये। यायावरी की इच्छा से बद्रीनाथ की पैदल यात्रा की और रामगढ़, नैनीताल में 'मीरा मंदिर' नाम की कुटीर का निर्माण किया। एक अवसर ऐसा भी आया कि विश्ववाणी के बुद्ध अंक का संपादन किया और 'साहित्यकार संसद' की स्थापना की। भारतीय रचनाकारों को आपस में जोड़ने के लिये 'अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन' का आयोजन किया और राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद से 'वाणी मंदिर' का शिलान्यास कराया।

इंदिरा गांधी के साथ

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात इलाचंद्र जोशी और दिनकर जी के साथ दक्षिण की साहित्यिक यात्रा की। निराला की काव्य-कृतियों से कविताएँ लेकर 'साहित्यकार संसद' द्वारा अपरा शीर्षक से काव्य-संग्रह प्रकाशित किया। 'साहित्यकार संसद' के मुख-पत्र साहित्यकार का प्रकाशन और संपादन इलाचंद्र जोशी के साथ किया। प्रयाग में नाट्य संस्थान 'रंगवाणी' की स्थापना की और उद्घाटन मराठी के प्रसिद्ध नाटककार मामा वरेरकर ने किया। इस अवसर पर भारतेंदु के जीवन पर आधारित नाटक का मंचन किया गया। अपने समय के सभी साहित्यकारों पर पथ के साथी में संस्मरण-रेखाचित्र-कहानी-निबंध-आलोचना सभी को घोलकर लेखन किया। 1954 में वे दिल्ली में स्थापित साहित्य अकादमी की सदस्या चुनी गई तथा 1981 में सम्मानित सदस्या। इस प्रकार महादेवी का संपूर्ण कार्यकाल राष्ट्र और राष्ट्रभाषा की सेवा में समर्पित रहा।

व्यक्तित्त्व

हिंदी साहित्य की तीन महान विभूतियाँ- डॉ.वर्मा, अज्ञेय और महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा के व्यक्तित्त्व में संवेदना दृढ़ता और आक्रोश का अद्भुत संतुलन मिलता है। वे अध्यापक, कवि, गद्यकार, कलाकार, समाजसेवी और

विदुषी के बहुरंगे मिलन का जीता जागता उदाहरण थीं। वे इन सबके साथ-साथ एक प्रभावशाली व्याख्याता भी थीं। उनकी भाव चेतना गंभीर, मार्मिक और संवेदनशील थी। उनकी अभिव्यक्ति का प्रत्येक रूप नितान्त मौलिक और हृदयग्राही था। वे मंचीय सफलता के लिए नारे, आवेशों और सस्ती उत्तेजना के प्रयासों का सहारा नहीं लेतीं। गंभीरता और धैर्य के साथ सुनने वालों के लिए विषय को संवेदनशील बना देती थीं, तथा शब्दों को अपनी संवेदना में मिला कर परम आत्मीय भाव प्रवाहित करती थीं। इलाचंद्र जोशी उनकी वक्तृत्व शक्ति के संदर्भ में कहते हैं - 'जीवन और जगत से संबंधित महानतम विषयों पर जैसा भाषण महादेवी जी देती हैं वह विश्व नारी इतिहास में अभूतपूर्व है। विशुद्ध वाणी का ऐसा विलास नारियों में तो क्या पुरुषों में भी एक रवीन्द्रनाथ को छोड़ कर कहीं नहीं सुना।' महादेवी जी विधान परिषद की माननीय सदस्या थीं। वे विधान परिषद में बहुत ही कम बोलती थीं, परंतु जब कभी महादेवी जी अपना भाषण देती थीं तब पं.कमलापति त्रिपाठी के कथनानुसार- सारा हाउस विमुग्ध होकर महादेवी के भाषणामृत का रसपान किया करता था। रोकने-टोकने का तो प्रश्न ही नहीं, किसी को यह पता ही नहीं चल पाता था कि कितना समय निर्धारित था और अपने निर्धारित समय से कितनी अधिक देर तक महादेवी ने भाषण किया।

उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद नगर में बिताया। 11 सितंबर 1987 को इलाहाबाद में रात 9 बजकर 30 मिनट पर उनका देहांत हो गया।

प्रमुख कृतियाँ

मुख्य लेख– महादेवी वर्मा की रचनाएँ

महादेवी जी कवयित्री होने के साथ-साथ विशिष्ट गद्यकार भी थीं। उनकी कृतियाँ इस प्रकार हैं–

1. पन्थ तुम्हारा मंगलमय हो। महादेवी के हस्ताक्षर
2. महादेवी वर्मा की प्रमुख गद्य रचनाएँ–

कविता संग्रह

1. नीहार (1930)
2. रश्मि (1932)

3. नीरजा (1934)
4. सांध्यगीत (1936)
5. दीपशिखा (1942)
6. सप्तपर्णा (अनूदित-1959)
7. प्रथम आयाम (1974)
8. अग्निरेखा (1990)

श्रीमती महादेवी वर्मा के अन्य अनेक काव्य संकलन भी प्रकाशित हैं, जिनमें उपर्युक्त रचनाओं में से चुने हुए गीत संकलित किये गये हैं, जैसे आत्मिका, परिक्रमा, सन्धिनी (1965), यामा (1936), गीतपर्व, दीपगीत, स्मारिका, नीलांबरा और आधुनिक कवि महादेवी आदि।

महादेवी वर्मा का गद्य साहित्य

रेखाचित्र– अतीत के चलचित्र (1941) और स्मृति की रेखाएं (1943),

संस्मरण– पथ के साथी (1956) और मेरा परिवार (1972) और संस्मरण (1983)

चुने हुए भाषणों का संकलन– संभाषण (1974)

निबंध– शृंखला की कड़ियाँ (1942), विवेचनात्मक गद्य (1942), साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध (1962), संकल्पिता (1969)

ललित निबंध– क्षणदा (1956)

कहानियाँ– गिल्लू

संस्मरण, रेखाचित्र और निबंधों का संग्रह– हिमालय (1963),

अन्य निबंध में संकल्पिता तथा विविध संकलनों में स्मारिका, स्मृति चित्र, संभाषण, संचयन, दृष्टिबोध उल्लेखनीय हैं। वे अपने समय की लोकप्रिय पत्रिका 'चाँद' तथा 'साहित्यकार' मासिक की भी संपादक रहीं। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने प्रयाग में 'साहित्यकार संसद' और रंगवाणी नाट्य संस्था की भी स्थापना की।

महादेवी वर्मा का बाल साहित्य

महादेवी वर्मा की बाल कविताओं के दो संकलन छपे हैं–

ठाकुरजी भोले हैं

आज खरीदेंगे हम ज्वाला

समालोचना

मुख्य लेख– महादेवी की काव्यगत विशेषताएँ

आधुनिक गीत काव्य में महादेवी जी का स्थान सर्वोपरि है। उनकी कविता में प्रेम की पीर और भावों की तीव्रता वर्तमान होने के कारण भाव, भाषा और संगीत की जैसी त्रिवेणी उनके गीतों में प्रवाहित होती है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। महादेवी के गीतों की वेदना, प्रणयानुभूति, करुणा और रहस्यवाद काव्यानुरागियों को आकर्षित करते हैं। पर इन रचनाओं की विरोधी आलोचनाएँ सामान्य पाठक को दिग्भ्रमित करती हैं। आलोचकों का एक वर्ग वह है, जो यह मानकर चलते हैं कि महादेवी का काव्य नितान्त वैयक्तिक है। उनकी पीड़ा, वेदना, करुणा, कृत्रिम और बनावटी है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे मूर्धन्य आलोचकों ने उनकी वेदना और अनुभूतियों की सच्चाई पर प्रश्न चिह्न लगाया है, दूसरी ओर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे समीक्षक उनके काव्य को समष्टि परक मानते हैं।

शोमेर ने 'दीप' (नीहार), मधुर-मधुर मेरे दीपक जल (नीरजा) और मोम सा तन गल चुका है, कविताओं को उद्धृत करते हुए निष्कर्ष निकाला है कि ये कविताएं महादेवी के 'आत्मभक्षी दीप' अभिप्राय को ही व्याख्यायित नहीं करतीं बल्कि उनकी कविता की सामान्य मुद्रा और बुनावट का प्रतिनिधि रूप भी मानी जा सकती हैं।

सत्यप्रकाश मिश्र छायावाद से संबंधित उनकी शास्त्र मीमांसा के विषय में कहते हैं ध "महादेवी ने वैदुष्य युक्त तार्किकता और उदाहरणों के द्वारा छायावाद और रहस्यवाद के वस्तु शिल्प की पूर्ववर्ती काव्य से भिन्नता तथा विशिष्टता ही नहीं बतायी, यह भी बताया कि वह किन अर्थों में मानवीय संवेदन के बदलाव और अभिव्यक्ति के नयेपन का काव्य है। उन्होंने किसी पर भाव साम्य, भावोपहरण आदि का आरोप नहीं लगाया केवल छायावाद के स्वभाव, चरित्र, स्वरूप और विशिष्टता का वर्णन किया।"

प्रभाकर श्रोत्रिय जैसे मनीषी का मानना है कि जो लोग उन्हें पीड़ा और निराशा की कवयित्री मानते हैं वे यह नहीं जानते कि उस पीड़ा में कितनी आग है, जो जीवन के सत्य को उजागर करती है।

यह सच है कि महादेवी का काव्य संसार छायावाद की परिधि में आता है, पर उनके काव्य को उनके युग से एकदम असम्पृक्त करके देखना, उनके

साथ अन्याय करना होगा। महादेवी एक सजग रचनाकार हैं। बंगाल के अकाल के समय 1943 में इन्होंने एक काव्य संकलन प्रकाशित किया था और बंगाल से सम्बंधित "बंग भू शत वंदना" नामक कविता भी लिखी थी। इसी प्रकार चीन के आक्रमण के प्रतिवाद में हिमालय नामक काव्य संग्रह का संपादन किया था। यह संकलन उनके युगबोध का प्रमाण है।

गद्य साहित्य के क्षेत्र में भी उन्होंने कम काम नहीं किया। उनका आलोचना साहित्य उनके काव्य की भांति ही महत्वपूर्ण है। उनके संस्मरण भारतीय जीवन के संस्मरण चित्र हैं।

उन्होंने चित्रकला का काम अधिक नहीं किया फिर भी जलरंगों में 'वॉश' शैली से बनाए गए उनके चित्र धुंधले रंगों और लयपूर्ण रेखाओं का कारण कला के सुंदर नमूने समझे जाते हैं। उन्होंने रेखाचित्र भी बनाए हैं। दाहिनी ओर करीन शोमर की किताब के मुखपृष्ठ पर महादेवी द्वारा बनाया गया रेखाचित्र ही रखा गया है। उनके अपने कविता संग्रहों यामा और दीपशिखा में उनके रंगीन चित्रों और रेखांकनों को देखा जा सकता है।

पुरस्कार व सम्मान

उन्हें प्रशासनिक, अर्धप्रशासनिक और व्यक्तिगत सभी संस्थाओँ से पुरस्कार व सम्मान मिले।

1943 में उन्हें 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' एवं 'भारत भारती' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद 1952 में वे उत्तर प्रदेश विधान परिषद की सदस्या मनोनीत की गयीं। 1956 में भारत सरकार ने उनकी साहित्यिक सेवा के लिये 'पद्म भूषण' की उपाधि दी। 1979 में साहित्य अकादमी की सदस्यता ग्रहण करने वाली वे पहली महिला थीं। 1988 में उन्हें मरणोपरांत भारत सरकार की पद्म विभूषण उपाधि से सम्मानित किया गया।

सन 1969 में विक्रम विश्वविद्यालय, 1977 में कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल, 1980 में दिल्ली विश्वविद्यालय तथा 1984 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने उन्हें डी.लिट की उपाधि से सम्मानित किया।

इससे पूर्व महादेवी वर्मा को 'नीरजा' के लिये 1934 में 'सक्सेरिया पुरस्कार', 1942 में 'स्मृति की रेखाएँ' के लिये 'द्विवेदी पदक' प्राप्त हुए। 'यामा' नामक काव्य संकलन के लिये उन्हें भारत का सर्वोच्च साहित्यिक

सम्मान 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' प्राप्त हुआ। वे भारत की 50 सबसे यशस्वी महिलाओं में भी शामिल हैं।

1968 में सुप्रसिद्ध भारतीय फिल्मकार मृणाल सेन ने उनके संस्मरण 'वह चीनी भाई' पर एक बांग्ला फिल्म का निर्माण किया था जिसका नाम था नील आकाशेर नीचे।

16 सितंबर 1991 को भारत सरकार के डाकतार विभाग ने जयशंकर प्रसाद के साथ उनके सम्मान में 2 रुपए का एक युगल टिकट भी जारी किया है।

महादेवी वर्मा का योगदान

साहित्य में महादेवी वर्मा का आविर्भाव उस समय हुआ जब खड़ीबोली का आकार परिष्कृत हो रहा था। उन्होंने हिन्दी कविता को बृजभाषा की कोमलता दी, छंदों के नये दौर को गीतों का भंडार दिया और भारतीय दर्शन को वेदना की हार्दिक स्वीकृति दी। इस प्रकार उन्होंने भाषा साहित्य और दर्शन तीनों क्षेत्रों में ऐसा महत्त्वपूर्ण काम किया जिसने आनेवाली एक पूरी पीढ़ी को प्रभावित किया। शचीरानी गुर्टू ने भी उनकी कविता को सुसज्जित भाषा का अनुपम उदाहरण माना है। उन्होंने अपने गीतों की रचना शैली और भाषा में अनोखी लय और सरलता भरी है, साथ ही प्रतीकों और बिंबों का ऐसा सुंदर और स्वाभाविक प्रयोग किया है, जो पाठक के मन में चित्र-सा खींच देता है। छायावादी काव्य की समृद्धि में उनका योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। छायावादी काव्य को जहाँ प्रसाद ने प्रकृतितत्त्व दिया, निराला ने उसमें मुक्तछंद की अवतारणा की और पंत ने उसे सुकोमल कला प्रदान की वहाँ छायावाद के कलेवर में प्राण-प्रतिष्ठा करने का गौरव महादेवी जी को ही प्राप्त है। भावात्मकता एवं अनुभूति की गहनता उनके काव्य की सर्वाधिक प्रमुख विशेषता है। हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव-हिलोरों का ऐसा सजीव और मूर्त अभिव्यंजन ही छायावादी कवियों में उन्हें 'महादेवी' बनाता है। वे हिन्दी बोलने वालों में अपने भाषणों के लिए सम्मान के साथ याद की जाती हैं। उनके भाषण जन सामान्य के प्रति संवेदना और सच्चाई के प्रति दृढ़ता से परिपूर्ण होते थे। वे दिल्ली में 1983 में आयोजित तीसरे विश्व हिन्दी सम्मेलन के समापन समारोह की मुख्य अतिथि थीं। इस अवसर पर दिये गये उनके भाषण में उनके इस गुण को देखा जा सकता है।

यद्यपि महादेवी ने कोई उपन्यास, कहानी या नाटक नहीं लिखा तो भी उनके लेख, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, भूमिकाओं और ललित निबंधों में जो गद्य लिखा है वह श्रेष्ठतम गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। उसमें जीवन का संपूर्ण वैविध्य समाया है। बिना कल्पना और काव्यरूपों का सहारा लिए कोई रचनाकार गद्य में कितना कुछ अर्जित कर सकता है, यह महादेवी को पढ़कर ही जाना जा सकता है। उनके गद्य में वैचारिक परिपक्वता इतनी है कि वह आज भी प्रासंगिक है। समाज सुधार और नारी स्वतंत्रता से संबंधित उनके विचारों में दृढ़ता और विकास का अनुपम सामंजस्य मिलता है। सामाजिक जीवन की गहरी परतों को छूने वाली इतनी तीव्र दृष्टि, नारी जीवन के वैषम्य और शोषण को तीखेपन से आंकने वाली इतनी जागरूक प्रतिभा और निम्न वर्ग के निरीह, साधनहीन प्राणियों के अनूठे चित्र उन्होंने ही पहली बार हिंदी साहित्य को दिये।

मौलिक रचनाकार के अलावा उनका एक रूप सृजनात्मक अनुवादक का भी है जिसके दर्शन उनकी अनुवाद-कृत 'सप्तपर्णा' (1960) में होते हैं। अपनी सांस्कृतिक चेतना के सहारे उन्होंने वेद, रामायण, थेरगाथा तथा अश्वघोष, कालिदास, भवभूति एवं जयदेव की कृतियों से तादात्म्य स्थापित करके 39 चयनित महत्वपूर्ण अंशों का हिन्दी काव्यानुवाद इस कृति में प्रस्तुत किया है। आरंभ में 61 पृष्ठीय 'अपनी बात' में उन्होंने भारतीय मनीषा और साहित्य की इस अमूल्य धरोहर के सम्बंध में गहन शोधपूर्ण विमर्ष किया है, जो केवल स्त्री-लेखन को ही नहीं हिंदी के समग्र चिंतनपरक और ललित लेखन को समृद्ध करता है।

5

उत्तर-छायावाद युग

यह काल भारतीय राजनीति में भारी उथल-पुथल का काल रहा है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय, कई विचारधाराओं और आन्दोलनों का प्रभाव इस काल की कविता पर पड़ा द्वितीय विश्वयुद्ध के भयावह परिणामों के प्रभाव से भी इस काल की कविता बहुत हद तक प्रभावित है। निष्कर्षतः राष्ट्रवादी, गांधीवादी, विप्लववादी, प्रगतिवादी, यथार्थवादी, हालावादी आदि विविध प्रकार की कवितायें इस काल में लिखी गई।

छायावादी काव्य सांस्कृतिक नवजागरण लेकर आया था, किन्तु सन् 1930 के बाद से उसमें परिवर्तन के कुछ लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे। वस्तुतः 'उत्तर छायावाद' नाम से जिस काव्य प्रवृत्ति को रेखांकित किया जाता है वह एक अल्पकालिक काव्य प्रवृत्ति रही है। उसका कार्य छायावादी काव्य को बदलना तथा एक जागृत युग की पृष्ठभूमि तैयार करना था। यूँ तो जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, इस आशय के प्रयास सन् '30 से ही दृष्टिगोचर हो रहे थे, तथापि सन् '34 और सन् '37 के बीच इस वर्ग के कवियों ने छायावाद विरोधी पृष्ठभूमि तैयार कर ली थी। एक ओर कामायनी के माध्यम से छायावाद ने अपनी मानसिक योजनाओं को साकार कर संभावनाओं को निःशेष कर दिया था। दूसरी ओर पंत ने युगांत की घोषणा कर दी थी। इस घोषणा को ऊँचे स्वर में पहले से ही परिवर्तन के लिए कटिबद्धता मध्यवर्गीय कवियों ने ग्रहण किया। सन् '34 में आचार्य नरेन्द्र देव के सभापतित्व में काँग्रेस में समाजवादी दल की स्थापना और 1936 में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना जैसे राजनीतिक और साहित्यिक संगठनों से कवियों को पर्याप्त शक्ति मिली।

उत्तर-छायावाद काल के कवियों में हरिवंशराय बच्चन, अंचल, नरेन्द्र, आरसीप्रसाद सिंह और भगवतीचरण वर्मा की गिनती की जाती है। इनके अतिरिक्त 'दिनकर' और 'सुमन' आदि के आरंभिक काव्य में भी ये प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। ये कवि मूलत: गीतकार हैं। अपनी मांसल, शरीरी वासनाओं और सामाजिक वर्जनाओं के कारण पलायन की अनुभूति को प्रत्यक्षत: व्यक्त करते हुए अभिव्यक्ति को अनलंकृत करने में और नवीनता की आवश्यकता को इन कवियों ने साकार किया है। उत्तर छायावादी कवि सीधे, सरल और ईमानदारी से अपनी अनुभूति का प्रकाशन करने लगे। इन्होंने जो कुछ अनुभव किया, उसमें से बहुत कुछ छायावादी ढंग का भी था, पर उनके कहने की पद्धति में अंतर स्पष्ट था। इनकी काव्य यात्रा में छायावाद के चिह्न आवरणहीन होकर और प्रगतिवादी साहित्य की सूचना दिखाई देती है। आवरण को हटाने के लोभ में वे कहीं-कहीं इतने नंगे हो गये कि रीतिकालीन साहित्य की एक दिशा का आभास होने लगा। उनका आरंभिक काल प्रणय के स्पष्ट, स्थूल और शरीरी रूप को व्यक्त करता है। वैयक्तिक जीवन में प्रणय-तुष्टि की इनका लक्ष्य रहने के कारण काव्य में अतृप्ति, निराशा तथा क्षोभ का वातावरण तैयार हो गया। कभी–

इस पार प्रिये मधु है, तुम हो
उस पार न जाने क्या होगा
और कभी
यदि मुझे उस पार में भी मिलन का विश्वास होता
सत्य कहता हूँ न मैं असहाय व नि:पाय होता

की विविध आशा-निराशा के द्वन्द्व की भूमिकाएँ इन कवियों के वैचारिक जगत को आन्दोलित करती रही। इनका काव्य इस दिशा में उत्तरोत्तर नग्न होता गया. जीवन के विकास में जिन प्रतिमानों को नकारा गया है, इन कवियों ने उन्हें पर्याप्त स्वीकृति दी।

उत्तर छायावाद के जन्म का कारण खोजते समय प्राय: यह कहा गया है कि वह छायावाद की परम्परा से कटकर आया। वस्तुत: ऐसा कहना अति सरलीकरण होगा। यह छायावाद का ही विकास था, अपने ढंग से। जिसे कुछ लोग संक्रांतिकाल भी कहते हैं। उत्तर छायावाद में सौन्दर्योपासना, मानवता के प्रति आस्था, नारी-प्रेम, भक्ति और आराधना आदि बिन्दु समान हैं। बदली है तो अभिव्यंजना प्रणाली। अस्तु छायावाद की प्रतिक्रिया में इस नये साहित्य ने जन्म

तो अवश्य लिया परन्तु मूल्यों की उपलब्धि की दृष्टि से इसका उतना महत्त्व नहीं है। प्रसाद-पंत-निराला के समानधर्मी कवि इस वर्ग में न आ सके।

उत्तरछायावाद की काव्य प्रवृत्तियाँ

1. वैयक्तिक अभावों की सहज स्वीकृति

इस युग के कवियों ने अपने ही नहीं समाज के प्रत्येक व्यक्ति के अभावों को समझा और नैतिक बंधनों को तोड़कर तद्रूपता के साथ व्यक्त किया। बच्चन ने खैयाम की मधुशाला की भूमिका में लिखा है–

मानव को जीवन में जब अधिक निराशा और दु:ख मिलेगा तो यह स्वाभाविक है कि यदि उसे आनंद का एक क्षण भी मिले तो वह विगत और आगत की चिंता छोड़कर उसका उपभोग करे।

नरेन्द्र, बच्चन और अंचल में यही जीवन-दृष्टि दिखाई पड़ती है।

2. जीवन संघर्ष से पलायन

छायावादी कवियों को भी पलायनवादी कहा जाता था और इन्हें भी। किन्तु दोनों में अंतर यह है कि छायावादी कवियों ने समाज के साथ अपने बाह्य संबंधों की अपेक्षा अंत: संबंध स्थापित किये, जबकि इन कवियों का पलायन एक प्रकार से विषम समाज के प्रति नकार और अस्वीकार का था। वे अपने संघर्ष और पराजय को भूलने के लिए मस्ती, मादकता और बेसुधी का वातावरण तैयार करते हैं।

3. शरीरी भोग एवं ऐन्द्रिकता

उत्तर छायावादी कवि अपनी वासनात्मक तुष्टि को सामाजिक हेय की वस्तु नहीं रहने देना चाहते। आलिंगन और चुंबन जैसी रति-क्रीड़ाओं को व्यक्त करने में इन्हें कोई संकोच नहीं–

तब से मना मना हारेंगे वारेंगे वारेंगे लाखों मधु चुंबन

''''

आ जाओ, आ मेरे समीप सम्पूर्ण नग्न, एकान्त नग्न

4. ईश्वर के प्रति विरोध की भावना

इन कवियों ने ऐसे ईश्वर के प्रति अपनी अनास्था व्यक्त की है जो लोककल्याणकारी और समदर्शी नहीं है। हालांकि इन कवियों की परवर्ती रचनाओं में ईश्वर के प्रति आस्था भी व्यक्त की गई है। बच्चन मठ, मंदिर, मस्जिद और गिरजाघर को पराजय के स्मारक मानते हैं–

मनुज पराजय के स्मारक हैं, मठ, मस्जिद, गिरजाघर

नरेन्द्र, आरसी और अंचल के काव्य में ईश्वर का तिरस्कार किया गया है।

5. सक्रिय जीवन शक्ति का अभाव

उत्तरछायावादी कवि ईश्वर-विरोधी और प्रकृत शक्तियों के प्रति निष्ठावान होते हुए भी निष्क्रिय और नियतिवादी हो गए थे। वे अपनी प्रिया की गोद में सोकर जगत के आवागमन से मुक्ति चाहते हैं। ये कवि नियति के अत्याचारों यथार्थ चितेरे होते हुए भी परवर्ती काल में उसके प्रशंसक हो जाते हैं। बच्चन ने लिखा है–

हम जिस क्षण में जो करते हैं

हम बाध्य वही हैं करने को

6. समाज से संघर्ष का द्वन्द्व

प्रकृतवादियों की भाँति ये कवि इन्द्रिय भोगों पर विश्वास करते थे और जीवन की क्षणभंगुरता में आस्था रखते थे, साथ ही

अपने सिवा और भी कुछ है जिस पर मैं निर्भर हूँ

मेरी प्यास हो न हो जब को मैं प्यासा निर्झर हूँ

कहकर जगत और अज्ञात शक्ति पर निष्ठा रखना इन कवियों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य था। ये समाज से कटकर जीने को अभिशप्त थे। हालांकि इनके यहाँ अपनी आत्मलीनता से बाहर आने की छटपटाहट भी है। बच्चन ने लिखा–

अपने से बाहर निकल देख

है विश्व खड़ा बाहें पसार

7. सहज सरल अभिव्यक्ति प्रणाली

उत्तरछायावादी कवि शास्त्रीय काव्य का सृजन नहीं करते। उनकी सृजनशक्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण बिन्दु भावावेश है। वस्तुतः गीत काव्य की सम्पूर्ण विशेषताओं से इनकी रचना आपूरित है। इनमें काव्य कौशल और रचना नैपुण्य का अभाव है। इनमें एक सुनिश्चित जीवन दर्शन का अभाव रहा है, जिसके आधार पर आगामी युगों के लिए कोई संदेश दे पाते।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

बालकृष्ण शर्मा नवीन (1897 - 1960 ई.) हिन्दी कवि थे। वे परम्परा और समकालीनता के कवि हैं। उनकी कविता में स्वच्छन्दतावादी धारा के प्रतिनिधि स्वर के साथ-साथ राष्ट्रीय आंदोलन की चेतना, गांधी दर्शन और

संवेदनाओं की झंकृतियां समान ऊर्जा और उठान के साथ सुनी जा सकती हैं। आधुनिक हिन्दी कविता के विकास में उनका स्थान अविस्मरणीय है। वे जीवनभर पत्रकारिता और राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े रहे। नवीन जी द्विवेदी युग के कवि हैं। इनकी कविताओं में भक्ति-भावना, राष्ट्र-प्रेम तथा विद्रोह का स्वर प्रमुखता से आया है। आपने ब्रजभाषा के प्रभाव से युक्त खड़ी बोली हिन्दी में काव्य रचना की। उन्हे साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में सन 1960 में पद्मभूषण से सम्मानित किया गया था।

जीवन परिचय

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का जन्म 8 दिसम्बर 1897 ई. को मध्य प्रदेश के शुजालपुर जिला शाजापुर के समीप के ग्राम भयाना में हुआ। उनके पिता जमुनादास शर्मा वल्लभ मत के अनुयायी थे और नाथद्वारा के मन्दिरों में पुरोहिती करते थे। मिडिल तक की पढ़ाई नवीन की गृहजनपद के परगना स्कूल में हुई। आगे की पढ़ाई के लिए उन्हें उज्जैन भेजा गया और वहाँ के माधव कॉलेज में प्रविष्ट होकर मैट्रिक की पढ़ाई पूरी की। बालकृष्ण शर्मा माधव कॉलेज, उज्जैन के अपने अध्ययनकाल में ही युगीन साहित्यिक वातावरण और राष्ट्रीय आन्दोलन की हलचलों में पर्याप्त रुचि लेने लगे थे और उन सबका उनके युवामन पर एक प्रभाव भी दर्ज हो रहा था। कानपुर से गणेशशंकर विद्यार्थी के सम्पादन में प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'प्रताप' का नियमित अध्ययन करते थे। इसी दौरान वे माखनलाल चतुर्वेदी और मैथिलीशरण गुप्त के संपर्क में आए। उन्होंने कांग्रेस के अधिवेशन में विधिवत भाग लिया।

साहित्य रचना

शर्माजी के साहित्यिक जीवन की पहली रचना 'सन्तू' नामक एक कहानी थी। इसे उन्होंने छपने के लिए सरस्वती में भेजा था। इसके बाद वे कविता की तरफ मुड़े। 'जीव ईश्वर वार्तालाप' शीर्षक की कविता से हिन्दी जगत इन्हें पहचानने लगा। इन सबसे अलग वे स्वतंत्रता आंदोलन में भी भाग लेने लगे। महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन में भाग लेने के लिए अपनी पढ़ाई छोड़कर राजनीति के क्षेत्र में आ गए। यहीं से नवीनजी की जेल यात्राओं का अनवरत सिलसिला शुरू हुआ, जो देश की आजादी तक निरंतर चलता रहा। असहयोग आंदोलन के बाद नमक सत्याग्रह, फिर व्यक्तिगत सत्याग्रह और अन्त में 1942

का ऐतिहासिक भारत छोड़ो आंदोलन। इस प्रकार कुल छः जेल यात्राओं में जिन्दगी के नौ साल नवीनजी ने जेल में बिताये। शर्माजी की सर्वश्रेष्ठ रचनाएं इन्हीं जेल यात्रओं के दौरान रची गईं। इनके महत्वपूर्ण काव्यग्रंथ हैं- कुमकुम, रश्मिरेखा, अपलक, क्वासि, उर्मिला, विनोबा स्तवन, प्राणार्पण तथा हम विषपायी जन्म के। पहली जेलयात्र के दौरान उर्मिला की शुरूआत की। उर्मिला महाकाव्य के प्रणयन में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा की झलक साफ देखी जा सकती है। छः सर्गों वाली इस कृति में यद्यपि उर्मिला के जन्म से लेकर लक्ष्मण से पुर्नमिलन तक की कथा कही गई है, लेकिन अन्य पक्षों के बजाय उर्मिला का विरह-वर्णन कला की दृष्टि से सबसे सरस बन पड़ा है।

देवि उर्मिले तेरी अकथित गाथा गाता हूँ मैं,
किंवा तव चरिताम्बुधि-भजन के हित आता हूँ मैं।
अति अगम्य बलवती लहर है थाह न पाता हूँ मैं।
हृदय शिला पर तव चरणों को देवि बिठाता हूँ मैं।

इसके अलावा उनकी अधिकांश कविताएं भी कारागार के शून्य कक्ष में ही लिखी गई हैं। जेल से बाहर नवीनजी काव्य की दृष्टि से कुछ विशेष नहीं लिख पाए। शिमला-समझौते में निराशा का अवतरण, मुसलमान भाइयों की खिदमत में, तुम्हारे उपवास की चिन्ता, 'एक ही थैली के चट्टे-बट्टे' आदि शीर्षकों से जो असंख्य अग्रलेख और निबंध, जेल से बाहर के अपने जीवन में नवीन ने लिखे, वे 'प्रताप' और 'प्रभा' में प्रकाशित होकर सतत् चर्चाओं के केन्द्र में रहे।

बालकृष्ण शर्मा एक अच्छे गद्यकार के साथ जागरूक पत्रकार थे। उन्होंने विद्यार्थीजी की ओजपूर्ण भावात्मक गद्य-शैली को अपना पाथेय बनाया था। विद्यार्थीजी के जीवनकाल में ही प्रताप और प्रभा के सम्पादन का स्वतंत्र दायित्व संभाल कर न सिर्फ उन्होंने अपनी पत्रकारिता संबंधी भाषाओं का परिचय दिया, बल्कि प्रभा के झण्डा अंक के द्वारा हिन्दी की राष्ट्रीय पत्रकारिता में एक गौरवपूर्ण पृष्ठ भी जोड़ा।

6

प्रगतिवादी युग की कविता

सन् 1936 के आस-पास काव्य लेखन के क्षेत्र में बहुत अमूल चूल परिवर्तन हुए, इन परिवर्तनों के फलस्वरूप कविता के नए स्वरूप का आगमन हमारे सम्मुख हुआ, जिसे प्रगतिवादी कवितायेँ और हिंदी साहित्य में इस युग को प्रगतिवादी युग कहा जाता है। प्रगतिवाद की कविताओं ने जीवन को यथार्थ से जोड़ा। प्रगतिवादी युग के अधिकांश कवि कार्ल मार्क्स की समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हैं।

प्रगतिवादी कवियों को हम तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम श्रेणी में उन काव्य लेखकों को सम्मिलित किया गया जो मूल रूप से पूर्ववर्ती काव्यधारा छायावाद से सम्बंधित हैं, दूसरी श्रेणी में वे कवि हैं, जो मूल रूप से प्रगतिवादी कवि हैं और तृतीय श्रेणी में वे कवि हैं जिन्होंने अपनी काव्य-साधना प्रगतिवादी कविताओं से शुरु की परन्तु बाद में उन्होंने प्रयोगवादी या नई प्रकार की कविताओं की ओर अपने काव्य को सृजित किया।

प्रगतिवादी धारा में समाज के शोषित वर्ग, मजदूर एवं किसानों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गयी, इसके साथ-साथ धार्मिक रूढ़ियों, उंच-नीच की भावना और सामाजिक विषमताओं पर चोट की गयी। इस युग में हिंदी कविता एक बार फिर किसानों, मजदूर, खेतों और खलिहानों से जुड़ी।

प्रमुख प्रगतिवादी कवि और उनकी प्रगतिवादी कविताओं का उल्लेख अग्रलिखित है-

1. सुमित्रनंदन पंत- प्रगतिवादी रचनाएं- युगांत, युगवाणी, ग्राम्या।

2. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला- प्रगतिवादी कविताएँ- कुकुरमुत्ता, अणिमा, नए पत्ते, बेला, अर्चना।
3. नरेन्द्र शर्मा- प्रवासी के गीत,,पलाश-वन, मिट्टी और फूल, अग्निशस्य।
4. रामेश्वर शुक्ल अंचल- किरण-वेला, लाल चुनर।
5. माखन लाल चतुर्वेदी-मानव।
6. रामधारी सिंह 'दिनकर'- कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, परशुराम की प्रतीक्षा।
7. उदयशंकर भट्ट- अमृत और विष।
8. बालकृष्ण शर्मा नवीन-कुमकुम, अपलक, रश्मि-रेखा।
9. जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद- बलिपथ के गीत, भूमि की अनुभुति, पंखुरियां।
10. केदारनाथ अग्रवाल- युग की गंगा, फूल नहीं रंग बोलते हैं, लोक तथा आलोक, नींद के बादल।
11. राम विलास शर्मा- रूप-तरंग।
12. नागार्जुन- युगधारा, हजार-हजार बांहों वाली, प्यासी पथराई आंखें, तुमने कहा था, तालाब की मछलिया, पुरानी जूतियों का कोरस, सतरंगे पंखों वाली, भस्मासुर (खंडकाव्य)।
13. रांगेय-राघव- अजेय खंडहर, मेधावी, राह के दीपक, पांचाली, पिघलते पत्थर।
14. शिव-मंगल सिंह 'सुमन'- हिल्लोल, जीवन के गान, प्रलय सृजन।
15. त्रिलोचन- मिट्टी की बात, धरती।

प्रगतिवादी कविता की प्रवृत्तियां

समाज और समाज से जुड़ी समस्याओं यथा गरीबी, अकाल, स्वाधीनता, किसान-मजदूर, शोषक-शोषित संबंध और इनसे उत्पन्न विसंगतियों पर जितनी व्यापक संवेदनशीलता इस धारा की कविता में है, वह अन्यत्र नहीं मिलती। यह काव्यधारा अपना संबंध एक ओर जहां भारतीय परंपरा से जोड़ती है वहीं दूसरी ओर भावी समाज से भी। वर्तमान के प्रति वह आलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टि अपनाती है। प्रगतिवादी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियां इस प्रकार हैं:-

1. सामाजिक यथार्थवाद-इस काव्यधारा के कवियों ने समाज और उसकी समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। समाज में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक विषमता के कारण दीन-दरिद्र वर्ग के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि के प्रसारण को इस काव्यधारा के कवियों ने प्रमुख

स्थान दिया और मजदूर, कच्चे घर, मटमैले बच्चों को अपने काव्य का विषय चुना।

सड़े घूर की गोबर की बदबू से दबकर
महक जिंदगी के गुलाब की मर जाती है
...केदारनाथ अग्रवाल

,,,,,

ओ मजदूर! ओ मजदूर!!
तू सब चीजों का कर्त्ता, तू हीं सब चीजों से दूर
ओ मजदूर! ओ मजदूर!!

,,,,,

श्वानों को मिलता वस्त्र दूध, भूखे बालक अकुलाते हैं।
मां की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़ों की रात बिताते हैं

,,,,,

युवती की लज्जा बसन बेच, जब ब्याज चुकाये जाते हैं
मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं
पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमंत्रण ---दिनकर

2. मानवतावाद का प्रकाशन–वह मानवता की अपरिमित शक्ति में विश्वास प्रकट करता है और ईश्वर के प्रति अनास्था प्रकट करता है, धर्म उसके लिए अफीम का नशा है –

जिसे तुम कहते हो भगवान–
जो बरसाता है जीवन में
रोग, शोक, दु:ख दैन्य अपार
उसे सुनाने चले पुकार

3.क्रांति का आह्वाहन: प्रगतिवादी कवि समाज में क्रांति की ऐसी आग भड़काना चाहता है,जिसमें मानवता के विकास में बाधक समस्त रूढ़ियां जलकर भस्म हो जाएं–

देखो मुट्ठी भर दानों को,तड़प रही कृषकों की काया।
कब से सुप्त पड़े खेतों से, देखो 'इन्कलाब' घिर आया।

,,,,,

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल पुथल मच जाए

4. शोषकों के प्रति आक्रोश– प्रगतिवाद दलित एवं शोषित समाज के 'खटमलों'-पूंजीवादी सेठों, साहूकारों और राजा-महाराजाओं-के शोषण के चित्र उपस्थित कर उनकी मानवता का पर्दाफाश करता है-

ओ मदहोश बुरा फल हो, शूरों के शोणित पीने का।
देना होगा तुझे एक दिन, गिन-गिन मोल पसीने का।

5. शोषितों को प्रेरणा–प्रगतिवादी कवि शोषित समाज को स्वावलम्बी बनाकर अपना उद्धार करने की प्रेरणा देता है-

न हाथ एक अस्त्र हो, न साथ एक शस्त्र हो।
न अन्न नीर वस्त्र हो, हटो नहीं, डटो नहीं, बढ़े चलो, बढ़े चलो।

वह शोषित में शक्ति देखता है और उसे क्रांति में पूरा विश्वास है। इस प्रकार प्रगतिवादी कवि को शोषित की संगठित शक्ति और अच्छे भविष्य पर आस्था है-

मैंने उसको जब-जब देखा- लोहा देखा
लोहा जैसा तपते देखा, बगलते देखा, ढ़लते देखा
मैंने उसको गोली जैसे चलते देखा
...केदारनाथ अग्रवाल

6. रूढ़ियों का विरोध- इस धारा के कवि बुद्धिवाद का हथौड़ा लेकर सामाजिक कुरीतियों पर तीखे प्रहार कर उनको चकनाचूर कर देना चाहते हैं-

गा कोकिल!बरसा पावक कण
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन ...पंत

7. तत्कालीन समस्याओं का चित्रण–प्रगति का उपासक कवि अपने समय की समस्याओं जैसे-बंगाल का अकाल आदि की ओर आंखें खोलकर देखता है और उनका यथार्थ रूप उपस्थित कर समाज को जागृत करना चाहता है-

बाप बेटा बेचता है
भूख से बेहाल होकर,
धर्म धीरज प्राण खोकर
हो रही अनरीति, राष्ट्र सारा देखता है
एक भिक्षुक की यथार्थ स्थिति–
वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ...निराला

8. मार्क्सवाद का समर्थन– इस धारा के कुछ कवियों ने मात्र साम्यवाद के प्रवर्तक कार्ल मार्क्स का तथा उसके सिद्धांतों का समर्थन करने हेतु प्रचारात्मक काव्य ही लिखा है-

साम्यवाद के साथ स्वर्ण-युग करता मधुर पदार्पण
और साथ ही साम्यवादी देशों का गुणगान भी किया है-
लाल रूस का दुश्मन साथी! दुश्मन सब इंसानों का

9. नया सौंदर्य बोध– प्रगतिवादी कवि श्रम में सौंदर्य देखते हैं। उनका सौंदर्य-बोध सामाजिक मूल्यों और नैतिकता से रहित नहीं है। वे अलंकृत या असहज में नहीं, सहज सामान्य जीवन और स्थितियों में सौंदर्य देखते हैं। खेत में काम करती हुई किसान नारी का यह चित्र इसी तरह का है-

बीच-बीच में सहसा उठकर खड़ी हुई वह युवती सुंदर
लगा रही थी पानी झुककर सीधी करे कमर वह पल भर
इधर-उधर वह पेड़ हटाती, रूकती जल की धार बहाती

10. व्यंग्य–सामाजिक, आर्थिक वैषम्य का चित्रण करने से रचना में व्यंग्य आ जाना स्वाभाविक है। व्यंग्य ऊपर-ऊपर हास्य लगता है किंतु वह अंततः करुणा उत्पन्न करता है। इसीलिए सामाजिक व्यंग्य अमानवीय-शोषण सत्ता का सदैव विरोध करता है। प्रगतिशील कवियों में व्यंग्य तो सबके यहां मिल जाएगा किंतु नागार्जुन इस क्षेत्र में सबसे आगे हैं। एक देहाती मास्टर दुखरन, उसके शिष्यों और मदरसे की यह तस्वीर नागार्जुन ने इस प्रकार खींची है-

घुन खाए शहतीरों पर की बारह खड़ी विधाता बांचे
फटी भीत है, छत है चूती, आले पर बिस्तुइया नाचे
लगा-लगा बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पांच तमाचे
इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम से सांचे।

11. प्रकृति–मानव समाज की भांति प्रकृति के क्षेत्र में भी प्रगतिवादी कवि सहज स्थितियों में सौंदर्य देखता है। उसका सौंदर्य बोध चयनवादी नहीं। प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति और ग्राम जीवन के अनुपम चित्र खींचे हैं जिनमें रूप-रस-गंध-वर्ण के बिम्ब उभरे हैं। नागार्जुन का 'बादल को घिरते देखा है', केदारनाथ अग्रवाल का 'बसंती हवा' और त्रिलोचन का 'धूप में जग-रूप सुंदर' उत्कृष्ट कविताएं हैं।

12. प्रेम– प्रगतिवादी कवियों ने प्रेम को सामाजिक-पारिवारिक रूप में देखा है। वर्ग-विभक्त समाज में प्रेम सहज नहीं हो पाता। प्रेम वर्ग-भेद, वर्ण-भेद

को मिटाता है। प्रगतिवादी कवि प्रेम की पीड़ा का एकांतिक चित्र करते हैं। किंतु वह वास्तविक जीवन संदर्भों में होता है। अत: उनका एकांत भी समाजोन्मुख होता है, जैसे त्रिलोचन का यह अकेलापन-

आज मैं अकेला हूं, अकेले रहा नहीं जाता
जीवन मिला है यह, रतन मिला है यह
फूल में मिला है या धूल में मिला है यह
मोल-तोल इसका अकेले कहा नहीं जाता
आज मैं अकेला हूं।

13. नारी-चित्रण –प्रगतिवादी कवि के लिए मजदूर तथा किसान के समान नारी भी शोषित है,जो युग-युग से सामंतवाद की कारा में पुरुष की दासता की लौहमयी जंजीरों से जकड़ी है। स्वतंत्र व्यक्तित्व खो चुकी है और केवल मात्र रह गई है पुरुष की वासना तृप्ति का उपकरण। इसलिए वह उसकी मुक्ति चाहता है- इसलिए वह उसकी मुक्ति चाहता है-

योनि नहीं है रे नारी! वह भी मानवी प्रतिष्ठित
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित

अधिकांश प्रगतिवादियों का नारी-प्रेम उच्छृंखल और स्वच्छंद है-

मैं अर्थ बताता द्रोहभरे यौवन का
मैं वासना नग्न को गाता उच्छृंखल

प्रगतिवादी कवि ने नारी के सुकोमल सौंदर्य की उपेक्षा करके उसके स्थूल शारीरिक सौंदर्य को ही अधिक उकेरा है। उसने नारी की कल्पना कृषक बालाओं व मजदूरनियों में की है।

14. साधारण कला पक्ष –प्रगतिवाद जनवादी है। अत: वह जन-भाषा का प्रयोग करता है। उसे ध्येय को व्यक्त करने की चिंता है। काव्य को अलंकृत करने की चिंता नहीं। अत: वह कहता है-

तुम वहन कर सको जन-जन में मेरते विचार।
वाणी! मेरी चाहिए क्या तुम्हें अलंकार।

छंदों में भी अपने स्वछंद दृष्टिकोण के अनुसार उन्होंने मुक्तक छंद का ही प्रयोग किया है-

खुल गए छंद के बंध, प्रास के रजत पाश ....पंत

प्रगतिवादी कविता में नए उपमानों को लिया गया है और वे सामान्य जन जीवन और लोक-गीतों से ग्रहण किए गए हैं-

कोयल की खान की मजदूरिनी सी रात।
बोझ ढोती तिमिर का विश्रांत सी अवदात।

मशाल, अजोंक, रक्त, तांडव, विप्लव, प्रलय आदि, आदि नए प्रतीक प्रगतिवादी साहित्य की अपनी सृष्टि हैं। प्रगतिवादी कवि का कला संबंधी दृष्टिकोण भाषा, छंद, अलंकार, प्रतीकों तथा वर्णित भावों से स्पष्ट हो जाता है। वह कला को स्वांत: सुखाय या कला कला के लिए नहीं, बल्कि जीवन के लिए, बहुजन के लिए अपनाता है। वह कविता को जन-जीवन का प्रतिनिधि मानता है।

नरेन्द्र शर्मा

पण्डित नरेन्द्र शर्मा (28 फरवरी 1913-11 फरवरी 1989) हिन्दी के लेखक, कवि तथा गीतकार थे। उन्होने हिन्दी फिल्मों (जैसे सत्यम शिवम सुन्दरम) के लिये गीत भी लिखे।

जीवन परिचय

पण्डित नरेन्द्र शर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश के खुर्जा जिले के जहांगीरपुर नामक गाँव में हुआ था। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से शिक्षाशास्त्र और अंग्रेजी में एम.ए. किया। 1934 में प्रयाग में 'अभ्युदय' पत्रिका का संपादन किया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी स्वराज्य भवन में हिंदी अधिकारी रहे और बॉम्बे टाकीज बम्बई में गीत लिखे। उन्होंने फिल्मों में गीत लिखे, आकाशवाणी से भी संबंधित रहे और स्वतंत्र लेखन भी किया।

रचनाएँ

उनके 17 कविता संग्रह, एक कहानी संग्रह, एक जीवनी और अनेक रचनाएँ पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। उनकी प्रमुख रचनाएं निम्नलिखित हैं-

प्रवासी के गीत, मिट्टी और फूल, अग्निशस्य, प्यासा निर्झर, मुठ्ठी बंद रहस्य (कविता-संग्रह), मनोकामिनी, द्रौपदी, उत्तरजय सुवर्णा (प्रबंध काव्य) आधुनिक कवि, लाल निशान (काव्य-संयचन) ज्वाला-परचूनी (कहानी-संग्रह, 1942 में 'कड़वी-मीठी बात' नाम से प्रकाशित) मोहनदास कर्मचंद गांधी–एक प्रेरक जीवनी, सांस्कृतिक संक्राति और संभावना (भाषण)। लगभग 55 फिल्मों में 650 गीत एवं 'महाभारत' का पटकथा-लेखन और गीत-रचना।

7

प्रयोगवाद-नयी कविता युग की कविता

प्रयोगवाद हिंदी साहित्य खासकर कविता की उस प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है जिसकी तरफ अज्ञेय ने दूसरा सप्तक की भूमिका में संकेत किया था। प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है बल्कि वह साधन और दोहरा साधन है। वह एक ओर तो सत्य को जानने का साधन है दूसरी तरफ वह उस साधन को भी जानने का साधन है। यह स्पष्टीकरण तार सप्तक की कविताओं को प्रयोगवादी कहे जाने पर दिया गया था। प्रयोगवाद में कविता में शिल्प और संवेदना के स्तर पर सर्वथा नवीन प्रयोग मिलते हैं। प्रयोगवाद ने साहित्य में पहली बार व्यक्तिक अस्मिता, निजी व्यक्तित्व और निजता को बहुत महत्त्व दिया। इसमें क्षण को महत्त्व देकर जीवन को भरपूर ढंग से जीने की चाह है। प्रयोगवादी कवि व्यक्तिक प्रेम की सहज स्वीकृति पर बल देता है।

प्रयोगवादी कविता की प्रवृत्तियां

प्रयोगवादी कविता में मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रवृत्तियां देखी गई हैं:-

1. समसामयिक जीवन का यथार्थ चित्रण- प्रयोगवादी कविता की भाव-वस्तु समसामयिक वस्तुओं और व्यापारों से उपजी है। रिक्शों के भोंपू की आवाज, लाउड स्पीकर का चीत्कार, मशीन के अलार्म की चीख, रेल के इंजन की सीटी आदि की यथावत अभिव्यक्ति इस कविता में मिलेगी। नलिन विलोचन शर्मा ने बसंत वर्णन के प्रसंग में लाउड स्पीकर को अंकित किया। प्रत्युष-वर्णन

में उन्होंने रिक्शों के भोंपू की आवाज का उल्लेख किया। एक अन्य स्थल पर रेल के इंजन की ध्वनि का उल्लेख हुआ। मदन वात्स्यायन ने कारखानों में चलने वाली मशीनों की ध्वनि का ज्यों का त्यों उल्लेख किया है। समसामयिकता के प्रति इनका इतना अधिक मोह है कि इन कवियों ने उपमान तथा बिम्बों का चयन भी समसामयिक युग के विभिन्न उपकरणों से किया है। भारत भूषण अग्रवाल ने लाउड स्पीकर तथा टाइपराइटर की की को उपमान के रूप प्रस्तुत किया। रघुवीर सहाय ने भी पहिये और सिनेमा की रील के उपमानों को ग्रहण किया है। केसरी कुमार ने व्यावसायिक जीवन के उपमानों का प्रयोग किया है। इसी प्रकार चिकित्सा तथा रसायन-शास्त्र से अनेकों उपमान प्रयोगवादी कवियों ने ग्रहण किए हैं। गिरिजाकुमार माथुर की हब्श देश नामक कविता की निम्न पंक्तियां देखिए जिनमें औद्योगिक और रासायनिक युग को वाणी प्रदान की गई है:–

उगल रही हैं खानें सोना,
अभ्रक,तांबा,जस्त,क्रोनियम
टीन,कोयला,लौह,प्लेटिनम
युरेनियम,अनमोल रसायन
कोपेक,सिल्क,कपास,अन्न-धन
द्रव्य फोसफैटो से पूरित!

2. घोर अहंनिष्ठ वैयक्तिकता- प्रयोगवादी कवि समाज-चित्रण की अपेक्षा वैयक्तिक कुरूपता का प्रकाशन करके समाज के मध्यमवर्गीय मानव की दुर्बलता का प्रकाशन करता है। मन की नग्न एवं अश्लील वृत्तियों का चित्रण करता है। अपनी असामाजिक एवं अहंवादी प्रकृति के अनुरूप मानव जगत के लघु और क्षुद्र प्राणियों को काव्य में स्थान देता है। भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता की प्रतिष्ठा करता है। कवि के मन की स्थिति, अनुभूति, विचारधारा तथा मान्यता इस कविता में विशेष रूप से अभिव्यक्त हुई है। व्यक्ति का केवल सामाजिक अस्तित्व ही नहीं है, बल्कि उसकी अपनी भावनाओं का भी एक संसार है। इसलिए इस कविता में अधिक ईमानदारी के साथ कवि के निजी दर्द अभिव्यक्त हुए हैं।

मेरी अंतरात्मा का यह उद्वेलन-
जो तुम्हें और तुम्हें और तुम्हें देखता है
और अभिव्यक्ति के लिए तड़प उठता है-

यही है मेरी स्थिति, यही मेरी शक्ति।

.....

चलो उठें अब
अब तक हम थे बंधु
सैर को आए-
और रहे बैठे तो
लोग कहेंगे
धुंधले में दुबके दो प्रेमी बैठे हैं
वह हम हों भी
तो यह हरी घास ही जाने (अज्ञेय)

3. विद्रोह का स्वर– इस कविता में विद्रोह का स्वर एक ओर समाज और परम्परा से अलग होने के रूप में मिलता है और दूसरी ओर आत्मशक्ति के उद्-घोष रूप में। परम्परा और रूढ़ि से मुक्ति पाने के लिए भवानी प्रसाद मिश्र कहते हैं–

ये किसी निश्चित नियम, क्रम की सरासर सीढ़ियां हैं
पांव रखकर बढ़ रहीं जिस पर कि अपनी पीढ़ियां हैं
बिना सीढ़ी के बढ़ेंगे तीर के जैसे बढ़ेंगे।

विद्रोह का दूसरा रूप चुनौती और ध्वंस की बलवती अभिव्यक्ति के रूप में मिलता है। भारत भूषण अग्रवाल में स्वयं का ज्ञान अधिक प्रबल हो उठा कि वे नियति को संघर्ष की चुनौती देते हुए कहते हैं:–

मैं छोड़कर पूजा
क्योंकि पूजा है पराजय का विनत स्वीकार-
बांधकर मुट्ठी तुझे ललकारता हूं
सुन रही है तू?
मैं खड़ा यहां तुझको पुकारता हूं।

आततायी सामाजिक परिवेश को चुनौती देते हुए अज्ञेय कहते हैं–

ठहर-ठहर आततायी! जरा सुन ले
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन ले।

वैज्ञानिक युग ने उसे पुराने चरित्रों के प्रति शंकित किया है, इसलिए वह उनके प्रति कोई श्रद्धा नहीं रखता। इस कविता के कवि को ईश्वर, नियति,

मंदिर, दैवी-व्यक्तियों एवं स्थानों में विश्वास नहीं है। वह स्वर्ग और नरक का अस्तित्व नहीं मानता। भारत भूषण अग्रवाल की निम्न पंक्तियां देखिए-

रात मैंने एक स्वपन देखा
मैंने देखा
कि मेनका अस्पताल में नर्स हो गई
और विश्वामित्र ट्यूशन कर रहें हैं
उर्वशी ने डांस स्कूल खोल लिया है
गणेश टॉफी खा रहे हैं

4. लघु मानव की प्रतिष्ठा– प्रयोगवादी काव्य में लघु मानव की ऐसी धारणा को स्थापित किया गया है जो इतिहास की गति को अप्रत्याशित मोड़ दे सकने की क्षमता रखता है, धर्मवीर भारती की ये पंक्तियां देखिए-

मैं रथ का टूटा पहिया हूं
लेकिन मुझे फेंको मत
इतिहासों की सामूहिक गति
सहसा झूठी पड़ जाने पर
क्या जाने
सच्चाई टूटे हुए पहियों का आश्रय ले

इस कविता में मानव के लघु व्यक्तित्व की उस शक्ति पर गौरव तथा अभिमान अभिव्यक्त हुआ है जो व्यक्ति की महत्ता की चरम सीमा का स्पर्श करती है।

5. अनास्थावादी तथा संशयात्मक स्वर– डॉ. शंभूनाथ चतुर्वेदी ने अनास्थामूलक प्रयोगवादी काव्य के दो पक्ष स्वीकार किए हैं। एक आस्था और अनास्था की द्वंद्वमयी अभिव्यक्ति, जो वस्तुत: निराशा और संशयात्मक दृष्टिकोण का संकेत करती है। दूसरी, नितांत हताशापूर्ण मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति।

कुंठा एक अनास्थामूलक वृत्ति है। प्रयोगवादी कवि अपनी कुंठाओं और वासनाओं को छिपाने में विश्वास नहीं रखता, इसलिए वह इनका नग्न रूप प्रस्तुत कर देता है। धर्मवीर भारती की निम्नांकित की पंक्तियां देखिए–

अपनी कुंठाओं की
दीवारों में बंदी
मैं घुटता हूं

प्रयोगवादी कविता में पस्ती, पराजय और अविश्वास की अभिव्यक्ति के रूप में भी अनास्था को प्रमुख स्थान मिला है। विजयदेव नारायण साही ने भी व्यक्ति या समाज को आक्रांत करने वाली अनास्था का भी स्पष्ट प्रकाशन किया है,और संपूर्ण समाज अथवा व्यक्ति विशेष से अनास्था के तत्वों को ग्रहण करने का भी संदेश दिया है-

हर आंसू कायरता की खीझ नहीं होता
बाहर आओ
सब साथ मिलकर रोओ

6. आस्था तथा भविष्य के प्रति विश्वास– जहां प्रयोगवाद के कुछ कवियों ने अनास्थावादी और संशयात्मकता को स्वर दिए वहीं कुछ अन्य कवियों ने जैसे नरेश मेहता तथा रघुवीर सहाय ने काव्य में अनास्थामूलक तत्वों को अनावश्यक पाया। गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में आस्था के बल पर नव-निर्माण का स्वर मुखरित हुआ है। हरिनारायण व्यास तथा नरेश मेहता में भी आस्थामूलक वृत्तियों के प्रति आग्रह है। आस्था का पहला रूप पुरोगामी संकल्प का सूचक है। अज्ञेय की कुछ कविताओं में भी आस्था की सफल अभिव्यक्ति हुई है-

मैं आस्था हूं
तो मैं निरंतर उठते रहने की शक्ति हूं
... ...
जो मेरा कर्म है, उसमें मुझे संशय का नाम नहीं
वह मेरी अपनी सांस-सा पहचाना है

आस्था के दूसरे रूप में सर्जन-शक्ति अथवा कर्म-निष्ठा की भावना रहती है। अन्यत्र अज्ञेय ने आस्था के माध्यम से पूर्णता के उच्चतम धरातल पर प्रतिष्ठित होने की बात का संकेत किया है-

आस्था न कांपे,मानव फिर मिट्टी का भी देवता हो जाता है।

7. वेदना की अनुभूति का प्रयोग– प्रयोगवादी कवि वेदना से पालायन न करके, उसके सान्निध्य की अभिलाषा करते हैं। इसे उसने दो रूपों में स्वीकार किया है-एक तो वेदना को सहन करने की लालसा और दूसरे वेदना या पीड़ा की अतल गहराइयों में बैठ कर नए अर्थ की उपलब्धि के रूप में। भारत भूषण अग्रवाल वेदना को उत्साहवर्धिनी मानते हैं–

पर न हिम्मत हार
प्रज्वलित है प्राण में अब भी व्यथा का दीप
ढाल उसमें शक्ति अपनी
लौ उठा

मुक्तिबोध की मान्यता है कि वेदना अथवा पीड़ा के अवशेष मानव की संघर्ष-शक्ति को उभारते हैं।

8. समष्टि कल्याण की भावना– इस कविता में व्यष्टि के सुख की अपेक्षा समष्टि के कल्याण को अधिक महत्त्व दिया गया है। रघुवीर सहाय सूर्य से धरती के जीवन को मंगलमय बनाने की प्रार्थना करते हुए कहते हैं–

आओ स्वीकार निमंत्रण यह करो
ताकि, ओ सूर्य,ओ पिता जीवन के
तुम उसे प्यार से वरदान कोई दे जाओ
जिससे भर जाये दूध से पृथ्वी का आंचल
जिससे इस दिन उनके पुत्रों के लिए मंगल हो

समष्टि हित के लिए कवि अपने व्यक्तिवाद तथा अहं का विसर्जन करने को भी तत्पर है। अज्ञेय का अकेला मदमाता दीपक अहं का प्रतीक है। उसे वे पंक्ति को समर्पित करने के लिए कहते हैं-

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता,पर
इसको भी पंक्ति को दे दो

9. वासना की नग्न अभिव्यक्ति– छायावादी कल्पना में प्रकृति के अनेक रूप-रंगों का चित्रण था,प्रगतिवाद की कविता में सामाजिक यथार्थ की प्रवृति रही तो प्रयोगवादी कविता में फ्रायड के मनोविश्लेषण के प्रभाव से नग्न यथार्थवाद का चित्रण इस कविता में हुआ। इस में साधनात्मक प्रेम का अभाव है मांसल प्रेम एवं दमित वासना की अभिव्यक्ति ही अधिक हुई है। प्रयोगवादी कवि अपनी ईमानदारी अपनी यौनवर्जनाओं के चित्रण में प्रदर्शित करता है। जब वह ऐसा करता है तो सेक्स को समस्त मानव प्रवृत्तियों और प्रेरणाओं का केंद्र-बिंदु मानता है। कुंवरनारायण ने यौनाशय को अत्यधिक महत्त्व दिया-

आमाशय
यौनाशय
गर्भाशय

जिसकी जिंदगी का यही आशय
यहीं इतना भोग्य
कितना सुखी है वह
भाग्य उसका ईर्ष्या के योग्य

धर्मवीर भारती ने तो संभोग-दशा का स्पष्ट चित्र ही उतार दिया है-

मैंने कसकर तुम्हें जकड़ लिया है
और जकड़ती जा रही हूंऔर निकट, और निकट
... ...
और तुम्हारे कंधो पर,बांहों पर, होठों पर
नागवधू की शुभ्र दंत-पंक्तियों के
नीले-नीले चिह्न उभर आये हैं --

इसी प्रकार एक उदाहरण और देखिए--

नंगी धूप, चूमते पुष्ट वक्ष
दूधिया बांहें रसती केसर-फूल
चौड़े कर्पूरी कूल्हों से दबती
सोफे की एसवर्गी चादर
रेशम जांघों से उकसीं
टांगों की चंदन डालें

10. क्षण की अनुभुति– प्रयोगवादी कविता में क्षण विशेष की अनुभूति को यथारूप प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति है। इस युग का कवि क्षण में ही संपूर्णता के दर्शन करता है-

एक क्षण– क्षण में प्रवाहमान
व्याप्त संपूर्णता
इस से कदापि बड़ा नहीं था महबुधि जो--
पिया था अगस्त्य ने।

जीवन के ये क्षण सुख-दुख, संयोग-वियोग, आशा-निराशा किसी भी रूप में हो सकते हैं। इस लिए इस कविता में विविधता व विरोधी प्रवृत्तियां एक साथ समाविष्ट हो गई हैं। धर्मवीर भारती की कविता में विरोधी अनुभूतियों का (आध्यात्मिक एवं भौतिक) सुंदर समन्वय हुआ है।

फूल झर गए
क्षण भर की ही तो देरी थी

अभी अभी तो दृष्टि फेरी थी
इतने में सौरभ के प्राण हर गए
फूल झर गए

10. भदेसपन–प्रयोगवादी कवियों ने प्रयोग की लालसा में उन सभी कुरुचियों, विकृतियों तथा भद्दे दृश्यों को भी कविता में चित्रित किया है जो जीवन और समाज में व्याप्त रहें हैं, लेकिन उपेक्षित। इन्हें चित्रित करने के पीछे प्रयोगवादी कवियों का तर्क है कि जीवन में सभी कुछ सुंदर नहीं होता, बल्कि असुंदर और घृणित वस्तु तथा दृश्य भी जीवन से जुड़े रहते हैं। इसलिए जीवन की पूर्णता में ये त्याज्य नहीं हैं और घिनौनी चीजों में सौंदर्य देखने के लिए विशेष साधना अपेक्षित है। इससे कविता में जुगुप्सा उत्पन्न होती है। अज्ञेय की कविता का एक उदाहरण देखिए-

निकटतर धंसती हुई छत, आड़ में निर्वेद
मूत्र-सिंचित मृत्तिका के वृत्त में
तीन टांगों पर खड़ा नत ग्रीव
धैर्य,धन,गदहा

11. व्यंग्य–व्यंग्य का गहरा पुट इस कविता की विशेषता रही है। आधुनिक जीवन की विसंगतियों पर, लोगों के बदलते हुए रूपों पर, सभ्यता के नाम पर फैले शोषण पर, राजनीति की कुटिल चालों पर, धर्म के व्यापारों पर, यह कविता व्यंग्य करती है। आज के जीवन का खोखलापन, स्वार्थपरता का भाव कवि के मन को खीझ से भर देता है। इसलिए वह इन पर गहरा व्यंग्य करता है। अज्ञेय की कविता सांप में शहरी सभ्यता पर करारा व्यंग्य है--

सांप तुम सभ्य ति हुए नहीं, न होगे,
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूं! उत्तर दोगे!
फिर कैसे सीखा डसना
विष कहां पाया।

12. काव्य शिल्प में नए प्रयोग– शिल्प के क्षेत्र में प्रयोगवादी कवियों के काव्य में अपूर्व क्रांति दिखाई पड़ती है। मुक्तिबोध के काव्य में वक्रता से सरलता की ओर जाने की प्रवृत्ति संकेतों के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। गिरिजाकुमार माथुर ने काव्य में विषय की अपेक्षा टेकनिक पर अधिक ध्यान दिया। भाषा, ध्वनि तथा छंद-विधान में उन्होंने नवीन प्रयोग किए। प्रभाकर माचवे

ने नई अलंकार- योजना, बिम्ब-विधान और उपमानों के नए प्रयोग किए। अज्ञेय ने साधारणीकरण की दृष्टि से भाषा संबंधी नवीनता को अधिक महत्त्व दिया। शमशेरबहादुर सिंह ने फ्रांसीसी प्रतीकवादी कवियों के प्रभाव में पर्याप्त प्रयोग किए, जिनके कारण उन्हें कवियों का कवि कहा जाने लगा। स्पष्ट है कि प्रयोगवादी कवियों ने भाषा, लय, शब्द, बिम्ब तथा छंद-विधान संबंधी नए प्रयोगों पर बहुत ध्यान दिया।

13. बिम्ब योजना– प्रयोगवादी कविता में बिम्ब-योजना बड़ी सफलता के साथ की गई है। इस कविता से पूर्व की किसी कविता में इतने अधिक स्पष्ट बिम्ब उतरे हैं, इसमें संदेह है। बिम्ब योजना के विषय में प्रयोगवादियों की बहुत बड़ी विशेषता यह है कि इनके बिम्ब नितान्त सजीव हैं। प्राकृतिक-बिम्बों का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

बूंद टपकी एक नभ से
किसी ने झुककर झरोखे से
कि जैसे हंस दिया हो

यहां बूंद टपकने और झरोखे से झांककर हंसने में सादृश्य दिखाया गया है।झरोखे से हँसी देखने के लिए निगाह ऊपर उठती है और टपकती बूंद भी आकाश की ओर बरबस नेत्रों को खींच लेती है। इस बिम्ब में अनुभूति की सूक्ष्मता तथा गहराई दर्शनीय है।

14. नए उपमान–अप्रस्तुत-योजना में प्रयोगवादी कवियों ने पुराने उपमानों का पूर्णत: परित्याग कर दिया है। इनके उपमान एकदम नए हैं। इनके अप्रस्तुत-विधान की प्रमुख विशेषता यह है कि वे जीवन से गृहीत हैं, उनकी संयोजना के लिए कल्पना के पंखों पर नहीं उड़ा गया है। उदाहरण के लिए प्रभाकर माचवे की ये दो पंक्तियां देखिए-

नोन-तेल लकड़ी की फिक्र में लगे घुन से
मकड़ी के जाले से, कोल्हू के बैल से।

उपमान की नवीनता मुक्तिबोध की इन पंक्तियों में भी देखते ही बनती है, जिनमें उन्होंने नेत्रों के लिए लालटेन और पांवों के लिए स्तम्भ के उपमानों को चुना है-

अंतर्मनुष्य
रिक्त सा गेह
दो लालटेन से नयन

निष्प्राण स्तम्भ
दो खड़े पांव
कुछ और उदाहरण देखिए-
प्यार का नाम लेते ही
बिजली के स्टोव सी
जो एकदम सुर्ख हो जाती है
ग् ग् ग् ग्
आपरेशन थियेटर सी
जो हर काम करते हुए चुप है

15. असंगत अनुषंग का प्रयोग—इलियट के काव्य-स्वरूप प्रयोगवादी कवियों में असंगत अनुषंगो(फ्री एशोसिएशंस) की भरमार मिलती है, जिससे इनका काव्य अत्यधिक दुरुह हो गया है। जहां पर ये कवि असंगत अनुषंगों का प्रयोग करने लग जाते हैं, वहां पर इनकी विचारधारा में पूर्वापर का संबंध न होने के कारण किसी एक निश्चित अर्थ पर पहुंचना मुश्किल हो जाता है। प्रयोगवादी कविता में सर्वप्रथम इस प्रवृत्ति का अवतरण अज्ञेय ने किया उसके बाद इसका बहुत अधिक प्रयोग होने लगा। असंगत अनुषंग अथवा असंबद्धता के लिए यहा नरेश की कुछ पंक्तियां उद्धृत हैं--

ई से ईश्वर
उ से उल्लू--
मां जी ?
नहीं जी
वह पंछी
जो देखता है रात भर

प्रस्तुत पंक्तियों का बड़ी माथा-पच्ची करने पर ही यह अर्थ निकाला जा सकता है कि कवि किसी कार्य में व्यस्त है कि इतने में उसका बच्चा ई से ईश्वर, उ से उल्लू रटता हुआ उसके पास आता है और सहसा कवि से अपनी मां जी के विषय में प्रश्न करता है। कवि संभवत: यह समझता है कि लड़का कदाचित यह पूछना चाहता है कि क्या मां उल्लू हैं? कवि प्रश्न को जैसा समझता है, उसके अनुसार उत्तर देता हुआ कहता है कि नहीं मां जी उल्लू नहीं है। उल्लू तो एक पक्षी है जो रात भर देखता है। स्पष्टत: असंगत अनुषंग

प्रयोगवादी कविता को समझने में बड़ी बाधा उत्पन्न करते हैं। इसमें साधारणीकरण का सर्वधा अभाव है।

16. नवीन शब्द-चयन –एक ओर शब्द चयन में प्रयोगवादी कवि बहुत उदारता के साथ ग्रामीण, देशज तथा प्रचलित शब्दों को अपनाता है वहीं दूसरी ओर संस्कृत और अंग्रेजी का व्यापक प्रयोग भी करता है। व्याकरण के नियमों से चिपक कर रहना भी उसे सह्य नहीं। अतः भाषा के एक नए ढग का नयापन आ गया है। इसमें नए क्रियापद भी बनते हैं। नए शब्दों में बतियाना, लम्बायित, बिलमान, अस्मिता, ईप्सा, क्लिन्त, इयत्ता, पारमिता आदि। इस प्रकार शब्दों को तोड़ा मरोड़ा गया है। इसके अलवा इन कवियों ने विज्ञान, दर्शन, मनोविज्ञान से भी शब्द ग्रहण किए हैं।

17. नवीन-प्रतीक–आज के जीवन और जगत के साथ-साथ आम आदमी को, वैज्ञानिक क्रियाओं को,शब्दों और प्रभावों को प्रयोगवादी कविता में स्थान दिया गया है। मनोविज्ञान से भी प्रतीक चुने गए हैं। कवियों ने सर्वथा पुराने प्रतीकों को त्याग कर नवीन प्रतीकों को ग्रहण किया है। मुक्तिबोध के प्रतीकों में ब्रह्मराक्षक, ओरांग-उटांग, गांधी, सुभाष, तिलक, रावण, वटवृक्ष आदि प्रसिद्ध प्रतीक हैं। नए प्रतीक जैसे प्यार का बल्ब फ्यूज हो गया, भी देखे जाते हैं।

18. छंद-विधान–प्रयोगवादियों ने छंद-विधान में तो आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया है। यहां विभिन्न तरह के प्रयोग हुए हैं। छंदों के परम्परागत मात्रिक रूपों से उसका कोई संबंध नहीं रह गया है। इससे कविता में कभी लय और गति का अभाव उत्पन्न होता है और कभी उसमें काव्यात्मकता के स्थान पर गद्यात्मकता आ जाती है। एक ओर लोकगीतों की धुनों के आधार पर कविताओं की रचना हुई है वहीं दूसरी ओर उर्दू की रूबाइयों और गजलों का प्रभाव भी कविता पर पड़ा है। अंग्रेजी के सॉनेट से मिलती-जुलती कविता भी इन कवियों ने लिखी। यह छंदहीन कविता मुक्तक छंद को अपनाती है।

भारत भूषण अग्रवाल की कविता का एक उदाहरण,जिसमें काव्य गद्यात्मक हो गया है:–

तुम अमीर थी
इसलिए हमारी शादी न हो सकी
पर मान लो, तुम गरीब होती--
तो भी क्या फर्क पड़ता

क्योंकि तब
मैं अमीर होता

अज्ञेय की एक कविता का अंश जिसमें लोक-गीत के आधार पर सरल काव्य रचना की गई है-

मेरा जिया हरसा
जो पिया, पानी बरसा
खड़-खड़ कर उठे पात
फड़क उठे गात

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक क्षेत्र में नवीनता का आग्रह प्रयोगवाद की उपलब्धि है। इसी के चलते कहीं-कहीं यह कविता दुरुह भी हो गई है। इसके लिए डॉ. नगेन्द्र ने पांच कारणों को प्रमुख माना-1. भावतत्त्व और काव्यानुभूति के मध्य रागात्मक के स्थान पर बुद्धिगत संबंध 2. साधारणीकरण का त्याग 3. उपचेतन मन के खंड अनुभवों का यथावत चित्रण 4. भाषा का एकांत एवं अनर्गल प्रयोग तथा 5. नूतनता का सर्वग्राही मोह।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात संसार भर में घोर निराशा तथा अवसाद की लहर फैल गई। साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा। 'अज्ञेय' के संपादन में 1943 में 'तार सप्तक' का प्रकाशन हुआ। तब से हिंदी कविता में प्रयोगवादी युग का जन्म हुआ ऐसी मान्यता है। इसी का विकसित रूप नयी कविता कहलाता है। दुर्बोधता, निराशा, कुंठा, वैयक्तिकता, छंदहीनता के आक्षेप इस कविता पर भी किए गए हैं। वास्तव में नयी कविता नयी रुचि का प्रतिबिंब है। इस धारा के मुख्य कवि हैं-

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' (7 मार्च, 1911 - 4 अप्रैल, 1987) को कवि, शैलीकार, कथा-साहित्य को एक महत्त्वपूर्ण मोड़ देने वाले कथाकार, ललित-निबन्धकार, सम्पादक और अध्यापक के रूप में जाना जाता है। इनका जन्म 7 मार्च 1911 को उत्तर प्रदेश के कसया, पुरातत्त्व-खुदाई शिविर में हुआ। बचपन लखनऊ, कश्मीर, बिहार और मद्रास में बीता। बी.एससी. करके अंग्रेजी में एम.ए. करते समय क्रांतिकारी आन्दोलन से जुड़कर बम बनाते हुए पकड़े गये और वहाँ से फरार भी हो गए। सन् 1930 ई. के अन्त में पकड़ लिये गये। अज्ञेय प्रयोगवाद एवं नई कविता को साहित्य जगत में प्रतिष्ठित करने वाले

कवि हैं। अनेक जापानी हाइकु कविताओं को अज्ञेय ने अनूदित किया। बहुआयामी व्यक्तित्त्व के एकान्तमुखी प्रखर कवि होने के साथ-साथ वे एक अच्छे फोटोग्राफर और सत्यान्वेषी पर्यटक भी थे।

जीवन परिचय

प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा पिता की देख-रेख में घर पर ही संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी और बांग्ला भाषा व साहित्य के अध्ययन के साथ हुई। 1925 में पंजाब से एंट्रेंस की परीक्षा पास की और उसके बाद मद्रास क्रिस्चन कॉलेज में दाखिल हुए। वहाँ से विज्ञान में इंटर की पढ़ाई पूरी कर 1927 में वे बी.एससी. करने के लिए लाहौर के फॅरमन कॉलेज के छात्र बने। 1929 में बी. एससी. करने के बाद एम.ए. में उन्होंने अंग्रेजी विषय लियावा पर क्रांतिकारी गतिविधियों में हिस्सा लेने के कारण पढ़ाई पूरी न हो सकी।

कार्यक्षेत्र

1930 से 1936 तक विभिन्न जेलों में कटे। 1936-37 में सैनिक और विशाल भारत नामक पत्रिकाओं का संपादन किया। 1943 से 1946 तक ब्रिटिश सेना में रहे, इसके बाद इलाहाबाद से प्रतीक नामक पत्रिका निकाली और ऑल इंडिया रेडियो की नौकरी स्वीकार की। देश-विदेश की यात्राएं कीं। जिसमें उन्होंने कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से लेकर जोधपुर विश्वविद्यालय तक में अध्यापन का काम किया। दिल्ली लौटे और दिनमान साप्ताहिक, नवभारत टाइम्स, अंग्रेजी पत्र वाक् और एवरीमैंस जैसी प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया। 1980 में उन्होंने वत्सलनिधि नामक एक न्यास की स्थापना की जिसका उद्देश्य साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में कार्य करना था। दिल्ली में ही 4 अप्रैल 1987 को उनकी मृत्यु हुई। 1964 में आँगन के पार द्वार पर उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ और 1978 में 'कितनी नावों में कितनी बार' पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार।

प्रमुख कृतियां

कविता संग्रह–भग्नदूत 1933, चिन्ता 1942, हरी घास पर क्षण भर 1949, बावरा अहेरी 1954, इन्द्रधनुष रौंदे हुये ये 1957,अरी ओ करुणा प्रभामय 1959, आँगन के पार द्वार 1961, कितनी नावों में कितनी बार (1967), क्योंकि

मैं उसे जानता हूँ (1970), सागर मुद्रा (1970), पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1974), महावृक्ष के नीचे (1977), नदी की बाँक पर छाया (1981), प्रिजन डेज एण्ड अदर पोयम्स (अंग्रेजी में, 1946)।

कहानियाँ–विपथगा 1937, परम्परा 1944, कोठरी की बात 1945, शरणार्थी 1948, जयदोल 1951।

उपन्यास–शेखर एक जीवनी- प्रथम भाग (उत्थान)1941, द्वितीय भाग (संघर्ष)1944, नदी के द्वीप 1951, अपने-अपने अजनबी 1961।

यात्रा वृतान्त–अरे यायावर रहेगा याद? 1943,एक बूँद सहसा उछली 1960।

निबंध संग्रह–सबरंग, त्रिशंकु, आत्मनेपद, आधुनिक साहित्य– एक आधुनिक परिदृश्य, आलवाल।

आलोचना–त्रिशंकु 1945, आत्मनेपद 1960, भवन्ती 1971, अद्यतन 1971 ई.।

संस्मरण–स्मृति लेखा।

डायरियां–भवंती, अंतरा और शाश्वती।

विचार गद्य–संवत्सर।

नाटक–उत्तरप्रियदर्शी।

जीवनी–रामकमल राय द्वारा लिखित शिखर से सागर तक।

संपादित ग्रंथ–आधुनिक हिन्दी साहित्य (निबन्ध संग्रह)1942, तार सप्तक (कविता संग्रह) 1943, दूसरा सप्तक (कविता संग्रह)1951, तीसरा सप्तक (कविता संग्रह), सम्पूर्ण 1959, नये एकांकी 1952, रूपांबरा 1960।

उनका लगभग समग्र काव्य सदानीरा (दो खंड) नाम से संकलित हुआ है तथा अन्यान्य विषयों पर लिखे गए सारे निबंध सर्जना और सन्दर्भ तथा केंद्र और परिधि नामक ग्रंथो में संकलित हुए हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के संपादन के साथ-साथ अज्ञेय ने तारसप्तक, दूसरा सप्तक और तीसरा सप्तक जैसे युगांतरकारी काव्य संकलनों का भी संपादन किया तथा पुष्करिणी और रूपांबरा जैसे काव्य-संकलनों का भी। वे वत्सलनिधि से प्रकाशित आधा दर्जन निबंध-संग्रहों के भी संपादक हैं। प्रख्यात साहित्यकार अज्ञेय ने यद्यपि कहानियां कम ही लिखीं और एक समय के बाद कहानी लिखना बिलकुल बंद कर दिया, परंतु हिन्दी कहानी को आधुनिकता की दिशा में एक नया और स्थायी मोड़ देने का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है। निस्संदेह वे आधुनिक साहित्य के एक शलाका-पुरूष

थे जिसने हिंदी साहित्य में भारतेंदु के बाद एक दूसरे आधुनिक युग का प्रवर्तन किया।

अज्ञेय रचनावली

अज्ञेय रचनावली के 18 खंडों में उनकी समस्त रचनाओं को संग्रहित करने का प्रयास किया गया है। इसके संपादक कृष्णदत्त पालीवाल हैं।

इन खंडों की सामग्री का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

1. काव्य
2. कहानियाँ
3. उपन्यास
4. भूमिकाएँ
5. यात्रा-वृत्त
6. डायरी
7. निबन्ध
8. संस्मरण, नाटक, निबन्ध
9. साक्षात्कार
10. साक्षात्कार और पत्र

गिरिजा कुमार माथुर

गिरिजा कुमार माथुर (22 अगस्त 1919 - 10 जनवरी 1994) एक कवि, नाटककार और समालोचक थे।

गिरिजा कुमार माथुर का जन्म मध्य प्रदेश के अशोक नगर में हुआ। उनके पिता देवीचरण माथुर स्कूल अध्यापक थे तथा साहित्य एवं संगीत के शौकीन थे। वे कविता भी लिखा करते थे। सितार बजाने में प्रवीण थे। माता लक्ष्मीदेवी मालवा की रहने वाली थीं और शिक्षित थीं। गिरिजाकुमार की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। उनके पिता ने घर ही अंग्रेजी, इतिहास, भूगोल आदि पढ़ाया। स्थानीय कॉलेज से इण्टरमीडिएट करने के बाद 1936 में स्नातक उपाधि के लिए ग्वालियर चले गये। ग्वालियर के विक्टोरिया कॉलेज से उन्होंने शिक्षा ग्रहण की तथा सन् 1938 में उन्होंने बी.ए. किया, 1941 में उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम.ए. किया तथा वकालत की परीक्षा भी पास की। सन् 1940 में उनका विवाह दिल्ली में शकुन्त माथुर से हुआ, जो अज्ञेय द्वारा

सम्पादित सप्तक परम्परा ('दूसरा सप्तक') की पहली कवयित्री रहीं। 1943 से 'ऑल इंडिया रेडियो' में अनेक महत्वपूर्ण पदों पर रहते हुए अंग्रेजी और उर्दू के वर्चस्व के बीच हिन्दी को पहचान दिलाई। लोकप्रिय रेडियो चौनल 'विविध भारती' उन्हीं की संकल्पना का मूर्त रूप है। माथुर जी दूरदर्शन के उप-महानिदेशक के पद से सेवानिवृत्त हुए।

गिरिजाकुमार की काव्यात्मक शुरुआत 1934 में ब्रजभाषा के परम्परागत कवित्त-सवैया लेखन से हुई। वे विद्रोही काव्य परम्परा के रचनाकार माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि की रचनाओं से अत्यधिक प्रभावित हुए और 1941 में प्रकाशित अपने प्रथम काव्य संग्रह 'मंजीर' की भूमिका उन्होंने निराला से लिखवायी। उनकी रचना का प्रारम्भ द्वितीय विश्वयुद्ध की घटनाओं से उत्पन्न प्रतिक्रियाओं से युक्त है तथा भारत में चल रहे राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन से प्रभावित है। सन् 1943 में अज्ञेय द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित 'तारसप्तक' के सात कवियों में से एक कवि गिरिजाकुमार भी हैं। यहाँ उनकी रचनाओं में प्रयोगशीलता देखी जा सकती है। कविता के अतिरिक्त वे एकांकी नाटक, आलोचना, गीति-काव्य तथा शास्त्रीय विषयों पर भी लिखते रहे हैं। भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद की साहित्यिक पत्रिका 'गगनांचल' का संपादन करने के अलावा उन्होंने कहानी, नाटक तथा आलोचनाएँ भी लिखी हैं। उनका ही लिखा एक भावान्तर गीत 'हम होंगे कामयाब' समूह गान के रूप में अत्यंत लोकप्रिय है।

1991 में आपको कविता-संग्रह 'मै वक्त के हूँ सामने' के लिए हिंदी का साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा इसी काव्य संग्रह के लिए 1993 में के. के. बिरला फाउंडेशन द्वारा दिया जाने वाला प्रतिष्ठित व्यास सम्मान प्रदान किया गया। उन्हें शलाका सम्मान से भी सम्मानित किया जा चुका है। गिरिजाकुमार माथुर की समग्र काव्य-यात्रा से परिचित होने के लिए उनकी पुस्तक 'मुझे और अभी कहना है' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

कृतियाँ

काव्य संग्रह

मंजीर

'तार सप्तक' में संगृहीत कविताएँ

नाश और निर्माण

धूप के धान

शिलापंख चमकीले
जो बँध नहीं सका
भीतरी नदी की यात्रा
छाया ना मन
साक्षी रहे वर्तमान
पृथ्वीकल्प
मैं वक्त के हूँ सामने
मुझे और अभी कहना है

डॉ प्रभाकर माचवे

डॉ प्रभाकर माचवे (1917 - 1991) हिन्दी के साहित्यकार थे। उनका जन्म ग्वालियर में हुआ एवं शिक्षा इंदौर में हुई।

रचनाएँ

इनके कविता-संग्रह हैं–'स्वप्न भंग', 'अनुक्षण, 'तेल की पकौड़ियां' तथा 'विश्वकर्मा' आदि। इन्होंने उपन्यास, निबंध, समालोचना, अनुवाद आदि मराठी, हिन्दी, अंग्रेजी में 100 से अधिक पुस्तकें लिखी हैं।

भारतभूषण अग्रवाल

भारतभूषण अग्रवाल छायावादोत्तर हिंदी कविता के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। वे अज्ञेय द्वारा संपादित तारसप्तक के महत्वपूर्ण कवि हैं।

जीवन परिचय

कवि, लेखक और समालोचक भारतभूषण अग्रवाल का जन्म 3 अगस्त 1919 (तुलसी-जयंती) को मथुरा (उ.प्र.) के सतघड़ा मोहल्ले में हुआ। उनका निधन 23 जून 1975 (सूर-जयंती) को हुआ। इन्होंने आगरा तथा दिल्ली में उच्च-शिक्षा प्राप्त की फिर आकाशवाणी में तथा अनेक साहित्यिक संस्थाओं में सेवा की। पैतृक व्यवसाय से दूर, उन्होंने साहित्य रचना को ही अपना कर्म माना। पहला काव्य-संग्रह 'छवि के बंधन' (1941) प्रकाशित होने के बाद, वे मारवाड़ी समाज के मुखपत्र 'समाज सेवक' के संपादक होकर कलकत्ता गए। यहीं उनका परिचय बांग्ला साहित्य और संस्कृति से हुआ। भारतभूषणजी

'तारसप्तक' (1943) में महत्वपूर्ण कवि के रूप में सम्मिलित हुए और अपनी कविताओं तथा वक्तव्यों के लिए चर्चित हुए। अपनी अन्य कृतियों 'जागते रहो' (1942), 'मुक्तिमार्ग' (1947) के लेखन के दौरान वे इलाहाबाद से प्रकाशित पत्रिका 'प्रतीक' से भी जुड़े और 1948 में आकाशवाणी में कार्यक्रम अधिकारी बने। 1959 में उनका एक संग्रह 'ओ अप्रस्तुत मन' प्रकाशित हुआ, जो उनकी रचनात्मक परिपक्वता और वैचारिक प्रौढ़ता का निदर्शन था।

प्रमुख कृतियाँ

छवि के बंधन, जागते रहो, ओ अप्रस्तुत मन, अनुपस्थित लोग, मुक्तिमार्ग, एक उठा हुआ हाथ, उतना वह सूरज है। कविता-संग्रह पर साहित्य अकादमी पुरस्कार, एक उठा हुआ हाथ, उतना वह सूरज है, अहिंसा, चलते-चलते, परिणति, प्रश्नचिह्न, फूटा प्रभात, भारतत्त्व, मिलन, विदा बेला, विदेह, समाधि लेख।

साहित्य अकादेमी के उपसचिव

डॉ. भारतभूषण अग्रवाल 1960 में साहित्य अकादमी के उपसचिव बने और अकादेमी के प्रकाशनों तथा कार्यक्रमों को राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित करने में अपना योगदान दिया। 1975 में वे उशतर अध्ययन संस्थान, शिमला के विजिटिंग फेलो बने और मृत्युपर्यंत 'भारतीय साहित्य में देश-विभाजन' विषय पर शोध करते रहे। अपनी व्यंग्यमुखर प्रखरता के नाते उनकी रचनाएं जहां अपने समकालीनों से सर्वथा अलग प्रतीत होती हैं, वहां आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण और प्रासंगिक बनी हुई हैं। विभिन्न विधाओं में समान रूप से लेखन में सिद्धहस्त डॉ. अग्रवाल की रचनाओं में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं- बहुत बाकी है, अनुपस्थित लोग, कागज के फूल, प्रसंगवश और कवि की दृष्टि। उनकी रचनावली चार खंडों में प्रकाशित हो चुकी है।

शमशेर बहादुर सिंह

शमशेर बहादुर सिंह (13 जनवरी 1911- 12 मई 1993) आधुनिक हिंदी कविता की प्रगतिशील के एक स्तंभ हैं। हिंदी कविता में अनूठे माँसल बिंबों के रचयिता शमशेर आजीवन प्रगतिवादी विचारधारा से जुड़े रहे। तार सप्तक से 'शुरुआत कर चुका भी नहीं हूँ मैं' के लिए साहित्य अकादमी सम्मान पाने वाले

शमशेर ने कविता के अलावा डायरी लिखी और हिंदी उर्दू शब्दकोश का संपादन भी किया।

जीवन वृत

शमशेर का जन्म 13 जनवरी 1911 को देहरादून में हुआ। उनके पिता का नाम तारीफ सिंह और माँ का परम देवी था। उनके भाई तेज बहादुर उनसे दो साल छोटे थे। उनकी मां दोनों भाइयों को 'राम-लक्ष्मण की जोड़ी' कहती थीं। शमशेर 8-9 साल के थे जब उनकी माँ की मृत्यु हो गई। लेकिन दोनों भाइयों की यह जोड़ी शमशेर की मृत्यु तक बनी रही। उनकी प्रारंभिक शिक्षा उनके ननिहाल देहरादून में हुई। बाद की शिक्षा गोंडा और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हुई। 1935-36 में उन्होंने उकील बंधुओं से कला प्रशिक्षण लिया।

सन् 1929 में 18 वर्ष की अवस्था में उनका विवाह धर्मवती के साथ हुआ। छः वर्ष के साथ के बाद 1935 में टीबी से धर्मवती की मृत्यु हो गई। चौबीस वर्ष के शमशेर को मिला जीवन का यह अभाव कविता में विभाव बनकर हमेशा मौजूद रहा। काल ने जिसे छीन लिया, उसे अपनी कविता में सजीव रखकर वे काल से होड़ लेते रहे।

युवाकाल में शमशेर वामपंथी विचारधारा और प्रगतिशील साहित्य से प्रभावित हुए। उनका जीवन निम्नमध्यवर्गीय व्यक्ति का था।

उनकी मृत्यु 12 मई 1993 को अहमदाबाद में हुई।

कार्यक्षेत्र

'रूपाभ', इलाहाबाद में कार्यालय सहायक (1939), 'कहानी' में त्रिलोचन के साथ (1940), 'नया साहित्य', बंबई में कम्यून में रहते हुए (1946, माया में सहायक संपादक (1948-54), नया पथ और मनोहर कहानियाँ में संपादन सहयोग। दिल्ली विश्वविद्यालय में विश्वविद्यालय अनुदान की एक महत्वपूर्ण परियोजना 'उर्दू हिन्दी कोश' का संपादन (1965-77), प्रेमचंद सृजनपीठ, विक्रम विश्वविद्यालय के अध्यक्ष (1981-85)।

महत्वपूर्ण कृतियां

कविता-संग्रह– कुछ कविताएं (1956), कुछ और कविताएं (1961), चुका भी नहीं हूं मैं (1975), इतने पास अपने (1980), उदिता -

अभिव्यक्ति का संघर्ष (1980), बात बोलेगी (1981), काल तुझसे होड़ है मेरी (1988)।

निबन्ध-संग्रह– दोआब

कहानी-संग्रह'– प्लाट का मोर्चा

विचारधारा

उन्होंने स्वाधीनता और क्रांति को अपनी 'निजी चीज' की तरह अपनाया। इंद्रिय-सौंदर्य के सबसे संवेदनापूर्ण चित्र देकर भी वे अज्ञेय की तरह सौंदर्यवादी नहीं है। उनमें एक ऐसा ठोसपन है, जो उनकी विनम्रता को ढुलमुल नहीं बनने देता, साथ ही किसी एक चौखटे में बंधने भी नहीं देता। निराला उनके प्रिय कवि थे। उन्हें याद करते हुए शमशेर ने लिखा था-

'भूल कर जब राह- जब-जब राह.. भटका मैं तुम्हीं झलके हे महाकवि, सघन तम की आंख बन मेरे लिए।'

शमशेर के राग-विराग गहरे और स्थायी थे। अवसरवादी ढंग से विचारों को अपनाना-छोड़ना उनका काम नहीं था। अपने मित्र-कवि केदारनाथ अग्रवाल की तरह शमशेर एक तरफ 'यौवन की उमड़ती यमुनाएं' अनुभव कर सकते थे, दूसरी तरफ 'लहू भरे गवालियर के बाजार में जुलूस' भी देख सकते थे। उनके लिए निजता और सामाजिकता में अलगाव और विरोध नहीं था, बल्कि दोनों एक ही अस्तित्त्व के दो छोर थे।

शमशेर उन कवियों में थे, जिनके लिए मार्क्सवाद की क्रांतिकारी आस्था और भारत की सुदीर्घ सांस्कृतिक परंपरा में विरोध नहीं था।

साहित्यिक वैशिष्ट्य

शमशेर सौंदर्य के अनूठे चित्रों के स्रष्टा के रूप में हिंदी में सर्वमान्य हैं। वे स्वयं पर इलियट-एजरा पाउंड-उर्दू दरबारी कविता का रुग्ण प्रभाव होना स्वीकार करते हैं। लेकिन उनका स्वस्थ सौंदर्यबोध इस प्रभाव से ग्रस्त नहीं है।

1. मोटी धुली लॉन की दूब,
साफ मखमल-सी कालीन।
ठंडी धुली सुनहली धूप।

2. बादलों के मौन गेरू-पंख, संन्यासी, खुले हैं श्याम पथ पर स्थिर हुए-से, चल।

'टूटी हुई, बिखरी हुई' प्रतिनिधि कविताएँ नहीं मानी जाती। उनमें शमशेर ने लिखा है-

'दोपहर बाद की धूप-छांह
में खड़ी इंतजार की ठेलेगाड़ियां- जैसे मेरी पसलियां..।
खाली बोरे सूजों से रफू किये जा रहे हैं।।
जो मेरी आंखों का सूनापन है।'

शमशेर के लिए मार्क्सवाद की क्रांतिकारी आस्था और भारत की सुदीर्घ सांस्कृतिक परंपरा में विरोध नहीं था। उषा शीर्षक कविता में उन्होंने भोर के नभ को नीले शंख की तरह देखा है।

'प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे'-

वैदिक कवियों की तरह वे प्रकृति की लीला को पूरी तन्मयता से अपनाते हैं-

1. जागरण की चेतना से मैं नहा उट्ठा।
सूर्य मेरी पुतलियों में स्नान करता।
2. सूर्य मेरी पुतलियों में स्नान करता
केश-तन में झिलमिला कर डूब जाता..

वे सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में सांप्रदायिकता के विरोधी और समाहारता के समर्थक थे। उन्होंने स्वयं को 'हिंदी और उर्दू का दोआब' कहा है। रूढिवाद-जातिवाद का उपहास करते हुए वे कहते हैं-

'क्या गुरुजी मनु जी को ले आयेंगे?
हो गये जिनको लाखों जनम गुम हुए।'

पुरस्कार व सम्मान

1977- साहित्य अकादमी पुरस्कार, 'चुका भी हूँ नहीं मैं' के लिये
मैथिली शरण गुप्त पुरस्कार
1989- कबीर सम्मान

प्रतिनिधि पंक्तियाँ

हाँ, तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मछलियाँ लहरों से करती हैं
...जिनमें वह फँसने नहीं आतीं,
जैसे हवाएँ मेरे सीने से करती हैं
जिसको वह गहराई तक दबा नहीं पातीं,
तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मैं तुमसे करता हूँ।

धर्मवीर भारती

धर्मवीर भारती (25 दिसंबर, 1926- 4 सितंबर, 1997) आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख लेखक, कवि, नाटककार और सामाजिक विचारक थे। वे एक समय की प्रख्यात साप्ताहिक पत्रिका धर्मयुग के प्रधान संपादक भी थे।

डॉ धर्मवीर भारती को 1972 में पद्मश्री से सम्मानित किया गया। उनका उपन्यास गुनाहों का देवता सदाबहार रचना मानी जाती है। सूरज का सातवां घोड़ा को कहानी कहने का अनुपम प्रयोग माना जाता है, जिस पर श्याम बेनेगल ने इसी नाम की फिल्म बनायी, अंधा युग उनका प्रसिद्ध नाटक है।। इब्राहीम अलकाजी, राम गोपाल बजाज, अरविन्द गौड़, रतन थियम, एम के रैना, मोहन महर्षि और कई अन्य भारतीय रंगमंच निर्देशकों ने इसका मंचन किया है।

जीवन परिचय

धर्मवीर भारती का जन्म 25 दिसंबर 1926 को इलाहाबाद के अतर सुइया मुहल्ले में हुआ। उनके पिता का नाम श्री चिरंजीव लाल वर्मा और माँ का श्रीमती चंदादेवी था। स्कूली शिक्षा डी. ए. वी. हाई स्कूल में हुई और उच्च शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय में। प्रथम श्रेणी में एम. ए. करने के बाद डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में सिद्ध साहित्य पर शोध-प्रबंध लिखकर उन्होंने पी-एच.डी. प्राप्त की।

घर और स्कूल से प्राप्त आर्यसमाजी संस्कार, इलाहाबाद और विश्वविद्यालय का साहित्यिक वातावरण, देश भर में होने वाली राजनैतिक हलचलें, बाल्यावस्था में ही पिता की मृत्यु और उससे उत्पन्न आर्थिक संकट इन सबने उन्हें अतिसंवेदनशील, तर्कशील बना दिया। उन्हें जीवन में दो ही शौक थे–अध्ययन और यात्र। भारती के साहित्य में उनके विशद अध्ययन और यात्र-अनुभवों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है–

जानने की प्रक्रिया में होने और जीने की प्रक्रिया में जानने वाला मिजाज जिन लोगों का है उनमें मैं अपने को पाता हूँ। (ठेले पर हिमालय)

उन्हें आर्यसमाज की चिंतन और तर्कशैली भी प्रभावित करती है और रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत। प्रसाद और शरदचन्द्र का साहित्य उन्हें विशेष प्रिय था। आर्थिक विकास के लिए मार्क्स के सिद्धांत उनके आदर्श थे परंतु मार्क्सवादियों की अधीरता और मताग्रहता उन्हें अप्रिय थे। 'सिद्ध साहित्य' उनके शोध' का विषय था, उनके सटजिया सिद्धांत से वे विशेष रूप से प्रभावित थे। पश्चिमी साहित्यकारों में शीले और आस्करवाइल्ड उन्हें विशेष प्रिय थे।

भारती को फूलों का बेहद शौक था। उनके साहित्य में भी फूलों से संबंधित बिंब प्रचुरमात्रा में मिलते हैं।

आलोचकों में भारती जी को प्रेम और रोमांस का रचनाकार माना है। उनकी कविताओं, कहानियों और उपन्यासों में प्रेम और रोमांस का यह तत्त्व स्पष्ट रूप से मौजूद है। परंतु उसके साथ-साथ इतिहास और समकालीन स्थितियों पर भी उनकी पैनी दृष्टि रही है जिसके संकेत उनकी कविताओं, कहानियों, उपन्यासों, नाटकों, आलोचना तथा संपादकीयों में स्पष्ट देखे जा सकते हैं। उनकी कहानियों-उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ के चित्र हैं 'अंधा युग' में स्वातंत्रयोत्तर भारत में आई मूल्यहीनता के प्रति चिंता है। उनका बल पूर्व और पश्चिम के मूल्यों, जीवन-शैली और मानसिकता के संतुलन पर है, वे न तो किसी एक का अंधा विरोध करते हैं न अंधा समर्थन, परंतु क्या स्वीकार करना और क्या त्यागना है इसके लिए व्यक्ति और समाज की प्रगति को ही आधार बनाना होगा।

पश्चिम का अंधानुकरण करने की कोई जरूरत नहीं है, पर पश्चिम के विरोध के नाम पर मध्यकाल में तिरस्कृत मूल्यों को भी अपनाने की जरूरत नहीं है। उनकी दृष्टि में वर्तमान को सुधारने और भविष्य को सुखमय बनाने के लिए आम जनता के दु:ख दर्द को समझने और उसे दूर करने की आवश्यकता है। दु:ख तो उन्हें इस बात का है कि आज 'जनतंत्र' में 'तंत्र' शक्तिशाली लोगों के हाथों में चला गया है और 'जन' की ओर किसी का ध्यान ही नहीं है। अपनी रचनाओं के माध्यम से इसी 'जन' की आशाओं, आकांक्षाओं, विवशताओं, कष्टों को अभिव्यक्ति देने का प्रयास उन्होंने किया है।

कार्यक्षेत्र–अध्यापन। 1948 में 'संगम' सम्पादक श्री इलाचंद्र जोशी में सहकारी संपादक नियुक्त हुए। दो वर्ष वहाँ काम करने के बाद हिन्दुस्तानी अकादमी में अध्यापक नियुक्त हुए। सन् 1960 तक कार्य किया। प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापन के दौरान 'हिंदी साहित्य कोश' के सम्पादन में सहयोग दिया। निकष' पत्रिका निकाली तथा 'आलोचना' का सम्पादन भी किया। उसके बाद 'धर्मयुग' में प्रधान सम्पादक पद पर बम्बई आ गये।

1997 में डॉ. भारती ने अवकाश ग्रहण किया। 1999 में युवा कहानीकार उदय प्रकाश के निर्देशन में साहित्य अकादमी दिल्ली के लिए डॉ. भारती पर एक वृत्त चित्र का निर्माण भी हुआ है।

अलंकरण तथा पुरस्कार

1972 में पद्मश्री से अलंकृत डा धर्मवीर भारती को अपने जीवन काल में अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए जिसमें से प्रमुख हैं।

1984 हल्दी घाटी श्रेष्ठ पत्रकारिता पुरस्कार

महाराणा मेवाड़ फाउंडेशन 1988

सर्वश्रेष्ठ नाटककार पुरस्कार संगीत नाटक अकादमी दिल्ली 1989

भारत भारती पुरस्कार उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान 1990

महाराष्ट्र गौरव, महाराष्ट्र सरकार 1994

व्यास सम्मान के के बिड़ला फाउंडेशन

प्रमुख कृतियां

कहानी संग्रह–मुर्दों का गाँव, स्वर्ग और पृथ्वी, चाँद और टूटे हुए लोग, बंद गली का आखिरी मकान, साँस की कलम से, समस्त कहानियाँ एक साथ

काव्य रचनाएं–ठंडा लोहा, सात गीत वर्ष, कनुप्रिया, सपना अभी भी, आद्यन्त

उपन्यास- गुनाहों का देवता, सूरज का सातवां घोड़ा, ग्यारह सपनों का देश, प्रारंभ व समापन

निबंध–ठेले पर हिमालय, पश्यंती

एकांकी व नाटक–नदी प्यासी थी, नीली झील, आवाज का नीलाम आदि

पद्य नाटक–अंधा युग

आलोचना–प्रगतिवाद–एक समीक्षा, मानव मूल्य और साहित्य

भाषा।

परिमार्जित खड़ीबोलीय मुहावरों, लोकोक्तियों, देशज तथा विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग।

शैली

भावात्मक, वर्णनात्मक, शब्द चित्रात्मक, आलोचनात्मक, हास्य व्यंग्यात्मक।

नरेश मेहता

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हिन्दी के यशस्वी कवि श्री नरेश मेहता उन शीर्षस्थ लेखकों में हैं, जो भारतीयता की अपनी गहरी दृष्टि के लिए जाने जाते हैं। नरेश मेहता ने आधुनिक कविता को नयी व्यंजना के साथ नया आयाम दिया।

रागात्मकता, संवेदना और उदात्तता उनकी सर्जना के मूल तत्त्व है, जो उन्हें प्रकृति और समूची सृष्टि के प्रति पर्युत्सुक बनाते हैं। आर्ष परम्परा और साहित्य को श्रीनरेश मेहता के काव्य में नयी दृष्टि मिली। साथ ही, प्रचलित साहित्यिक रुझानों से एक तरह की दूरी ने उनकी काव्य-शैली और संरचना को विशिष्टता दी।

श्री नरेश मेहता ने इन्दौर से प्रकाशित चौथा संसार हिन्दी दैनिक का सम्पादन भी किया।

जीवन परिचय

नरेश मेहता का जन्म सन् 1922 ई. में मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र के शाजापुर कस्बे में हुआ। बनारस विश्वविद्यालय से आपने एम.ए. किया। आपने आल इण्डिया रेडियो इलाहाबाद में कार्यक्रम अधिकारी के रूप में कार्य किया।

नरेश मेहता दूसरा सप्तक के प्रमुख कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। सन् 2000 ई. में मेहता जी का निधन हो गया। नरेश मेहता को उनकी साहित्यिक सेवाओं के लिए 1992 में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

भाषा शैली

नरेश मेहता की भाषा संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली है। शिल्प और अभिव्यंजना के स्तर पर उसमें ताजगी और नयापन है। उन्होंने सीधे, सरल बिम्बों का प्रयोग भी किया है। मेहता जी की भाषा विषयानुकूल, भावपूर्ण तथा प्रवाहमयी है। उनके काव्य में रूपक, मानवीकरण, उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। नवीन उपमानो के साथ-साथ परंपरागत और नवीन छंदों का प्रयोग मेहता जी ने किया है।

कृतियाँ

अरण्या, उत्तर कथा, एक समर्पित महिला, कितना अकेला आकाश चैत्या, दो एकान्त, धूमकेतुः एक श्रुति, पुरुष, प्रति श्रुति प्रवाद पर्व, बोलने दो चीड़ को, यह पथ बन्धु था, हम अनिकेतन।

रघुवीर सहाय

रघुवीर सहाय (9 दिसम्बर 1929 - 30 दिसम्बर 1990) हिन्दी के साहित्यकार व पत्रकार थे।

रचनाएँ

दूसरा सप्तक, सीढ़ियों पर धूप में, आत्महत्या के विरुद्ध, हँसो हँसो जल्दी हँसो (कविता संग्रह), रास्ता इधर से है (कहानी संग्रह), दिल्ली मेरा परदेश और लिखने का कारण (निबंध संग्रह) उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं।

इसके अलावा 'बारह हंगरी कहानियाँ', विवेकानंद (रोमां रोला), 'जेको', (युगोस्लावी उपन्यास, ले. येर्जी आन्द्र्जेएव्स्की, 'राख और हीरे' (पोलिश उपन्यास,ले. येर्जी आन्द्र्जेएव्स्की) तथा 'वरनम वन' (मैकबेथ, शेक्सपियर) शीर्षक से हिन्दी भाषांतर भी समय-समय पर प्रकाशित हुए हैं।

रघुवीर सहाय समकालीन हिन्दी कविता के महत्वपूर्ण स्तम्भ हैं। उनके साहित्य में पत्रकारिता का और उनकी पत्रकारिता पर साहित्य का गहरा असर रहा है। उनकी कविताएँ आजादी के बाद विशेष रूप से सन् '60 के बाद के भारत की तस्वीर को समग्रता में पेश करती हैं। उनकी कविताएँ नए मानव संबंधों की खोज करना चाहती हैं जिसमें गैर बराबरी, अन्याय और गुलामी न हो। उनकी समूची काव्य-यात्र का केंद्रीय लक्ष्य ऐसी जनतांत्रिक व्यवस्था की निर्मिति है जिसमें शोषण, अन्याय, हत्या, आत्महत्या, विषमता, दासता, राजनीतिक संप्रभुता, जाति-धर्म में बँटे समाज के लिए कोई जगह न हो। जिन आशाओं और सपनों से आजादी की लड़ाई लड़ी गई थी उन्हें साकार करने में जो बाधाएँ आ रही हों, उनका निरंतर विरोध करना उनका रचनात्मक लक्ष्य रहा है। वे जीवन के अंतिम पायदान पर खड़े होकर अपनी जिजीविषा का कारण 'अपनी संतानों को कुत्ते की मौत मरने से बचाने' की बात कहकर अपनी प्रतिबद्धता को मरते दम तक बनाए रखते हैं।

सम्मान

कविता संग्रह 'लोग भूल गए हैं ' के लिए 1984 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना मूलत: कवि एवं साहित्यकार थे, पर जब उन्होंने दिनमान का कार्यभार संभाला तब समकालीन पत्रकारिता के समक्ष उपस्थित चुनौतियों को समझा और सामाजिक चेतना जगाने में अपना अनुकरणीय योगदान दिया। सर्वेश्वर मानते थे कि जिस देश के पास समृद्ध बाल साहित्य नहीं है,

उसका भविष्य उज्ज्वल नहीं रह सकता। सर्वेश्वर की यह अग्रगामी सोच उन्हें एक बाल पत्रिका के सम्पादक के नाते प्रतिष्ठित और सम्मानित करती है।

जीवन परिचय

जन्म

15 सितंबर 1927 को बस्ती में विश्वेश्वर दयाल के घर।

शिक्षा

इलाहाबाद से उन्होंने बीए और सन 1949 में एमए की परीक्षा उत्तीर्ण की।

कार्यक्षेत्र

1949 में प्रयाग में उन्हें एजी आफिस में प्रमुख डिस्पैचर के पद पर कार्य मिल गया। यहाँ वे 1955 तक रहे।

तत्पश्चात आल इंडिया रेडियो के सहायक संपादक (हिंदी समाचार विभाग) पद पर उनकी नियुक्ति हो गई। इस पद पर वे दिल्ली में वे 1960 तक रहे।

सन 1960 के बाद वे दिल्ली से लखनऊ रेडियो स्टेशन आ गए। 1964 में लखनऊ रेडियो की नौकरी के बाद वे कुछ समय भोपाल एवं रेडियो में भी कार्यरत रहे।

सन 1964 में जब दिनमान पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ तो वरिष्ठ पत्रकार एवं साहित्यकार सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' के आग्रह पर वे पद से त्यागपत्र देकर दिल्ली आ गए और दिनमान से जुड़ गए। 1982 में प्रमुख बाल पत्रिका पराग के सम्पादक बने। नवंबर 1982 में पराग का संपादन संभालने के बाद वे मृत्युपर्यन्त उससे जुड़े रहे।

निधन 23 सितंबर 1983 को नई दिल्ली में उनका निधन हो गया।

सर्वेश्वर का रचना संसार

काव्य

1. तीसरा सप्तक–सं. अज्ञेय, 1959
2. काठ की घंटियां–1959

3. बांस का पुल–1963
4. एक सूनी नाव–1966
5. गर्म हवाएं–1966
6. कुआनो नदी–1973
7. जंगल का दर्द–1976
8. खूंटियों पर टंगे लोग–1982
9. क्या कह कर पुकारूं–प्रेम कविताएं
10. कविताएं (1)
11. कविताएं (2)
12. कोई मेरे साथ चले
13. मेघ आये
14. काला कोयल

कथा-साहित्य

1. पागल कुत्तों का मसीहा (लघु उपन्यास)–1977
2. सोया हुआ जल (लघु उपन्यास)–1977
3. उड़े हुए रंग–(उपन्यास) यह उपन्यास सूने चौखटे नाम से 1974 में प्रकाशित हुआ था।
4. कच्ची सड़क–1978
5. अंधेरे पर अंधेरा–1980
6. अनेक कहानियों का भारतीय तथा यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद
   सोवियत कथा संग्रह 1978 में सात महत्वपूर्ण कहानियों का रूसी अनुवाद।

नाटक

1. बकरी–1974 (इसका लगभग सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद तथा मंचन)
2. लड़ाई–1979
3. अब गरीबी हटाओ–1981
4. कल भात आएगा तथा हवालात–
   (एकांकी नाटक एम.के.रैना के निर्देशन में प्रयोग द्वारा 1979 में मंचित)
5. रूपमती बाज बहादुर तथा होरी धूम मचोरी मंचन 1976

यात्रा संस्मरण

1. कुछ रंग कुछ गंध–1971

बाल कविता

1. बतूता का जूता–1971
2. महंगू की टाई–1974

बाल नाटक 1. भों-भों खों-खों–1975 2. लाख की नाक–1979

संपादन

1. शमशेर (मलयज के साथ–1971)
2. रूपांबरा–(सं. अज्ञेय जी–1980 में सहायक संपादक सर्वेश्वर दयाल सक्सेना)
3. अंधेरों का हिसाब–1981
4. नेपाली कविताएं–1982
5. रक्तबीज–1977

अन्य

1. दिनमान साप्ताहिक में चरचे और चरखे नाम से चुटीली शैली का गद्य–1969 से नियमित।
2. दिनमान तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में साहित्य, नृत्य, रंगमंच, संस्कृति आदि के विभिन्न विषयों पर टिप्पणियां तथा समीक्षात्मक लेख।
3. सर्वेश्वर की संपूर्ण गद्य रचनाओं को चार खण्डों में किताबघर दिल्ली ने छापा है।

कुँवर नारायण

कुँवर नारायण (19 सितम्बर 1927 15 नवम्बर 2017) एक हिन्दी साहित्यकार थे। नई कविता आन्दोलन के सशक्त हस्ताक्षर कुँवर नारायण अज्ञेय द्वारा संपादित तीसरा सप्तक (1959) के प्रमुख कवियों में रहे हैं। 2009 में उन्हें वर्ष 2005 के लिए भारत के साहित्य जगत के सर्वोच्च सम्मान ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

कुँवर नारायण को अपनी रचनाशीलता में इतिहास और मिथक के जरिये वर्तमान को देखने के लिए जाना जाता है। उनका रचना संसार इतना व्यापक एवं जटिल है कि उसको कोई एक नाम देना सम्भव नहीं। यद्यपि कुंवर नारायण की मूल विधा कविता रही है पर इसके अलावा उन्होंने कहानी, लेख व समीक्षाओं के साथ-साथ सिनेमा, रंगमंच एवं अन्य कलाओं पर भी बखूबी लेखनी चलायी है। इसके चलते जहाँ उनके लेखन में सहज संप्रेषणीयता आई वहीं वे प्रयोगधर्मी भी बने रहे। उनकी कविताओं-कहानियों का कई भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है। 'तनाव' पत्रिका के लिए उन्होंने कवाफी तथा ब्रोर्खेस की कविताओं का भी अनुवाद किया है।

जीवन परिचय

उन्होने इंटर तक की पढ़ाई विज्ञान विषय से की लेकिन आगे चल कर वे साहित्य के विद्यार्थी बने और 1951 में लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया। वे उत्तर प्रदेश के संगीत नाटक अकादमी के 1976 से 1979 तक उप पीठाध्यक्ष रहे और 1975 से 1978 तक अज्ञेय द्वारा संपादित मासिक पत्रिका नया प्रतीक के संपादक मंडल के सदस्य भी रहे। पहले माँ और फिर बहन की असामयिक मौत ने उनकी अन्तरात्मा को झकझोर कर रख दिया, पर टूट कर भी जुड़ जाना उन्होंने सीख लिया था। पैतृक रूप में उनका कार का व्यवसाय था, पर इसके साथ उन्होंने साहित्य की दुनिया में भी प्रवेश करना मुनासिब समझा। इसके पीछे वे कारण गिनाते हैं कि साहित्य का धंधा न करना पड़े इसलिए समानान्तर रूप से अपना पैतृक धंधा भी चलाना उचित समझा।

साहित्य यात्रा

एम.एम. करने के ठीक पाँच वर्ष बाद वर्ष 1956 में 29 वर्ष की आयु में उनका प्रथम काव्य संग्रह चक्रव्यूह नाम से प्रकाशित हुआ। अल्प समय में ही अपनी प्रयोगधर्मिता के चलते उन्होंने पचान स्थापित कर ली और नतीजन अज्ञेय जी ने वर्ष 1959 में उनकी कविताओं को केदारनाथ सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और विजयदेव नारायण साही के साथ 'तीसरा सप्तक' में शामिल किया। यहाँ से उन्हें काफी प्रसिद्धि मिली। 1965 में 'आत्मजयी' जैसे प्रबंध काव्य के प्रकाशन के साथ ही कुंवर नारायण ने असीम संभावनाओं वाले कवि के रूप में पहचान बना ली। फिर तो आकारों के आसपास (कहानी संग्रह-1971),

परिवेश–हम-तुम, अपने सामने, कोई दूसरा नहीं, इन दिनों, आज और आज से पहले (समीक्षा), मेरे साक्षात्कार और हाल ही में प्रकाशित वाजश्रवा के बहाने सहित उनकी तमाम कृतियाँ आई।

समालोचना

कुँवर नारायण हमारे दौर के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार हैं। उनकी काव्ययात्रा 'चक्रव्यूह' से शुरू हुई। इसके साथ ही उन्होंने हिन्दी के काव्य पाठकों में एक नई तरह की समझ पैदा की। उनके संग्रह 'परिवेश हम तुम' के माध्यम से मानवीय संबंधों की एक विरल व्याख्या हम सबके सामने आई। उन्होंने अपने प्रबंध 'आत्मजयी' में मृत्यु संबंधी शाश्वत समस्या को कठोपनिषद का माध्यम बनाकर अद्‌भुत व्याख्या के साथ हमारे सामने रखा। इसमें नचिकेता अपने पिता की आज्ञा, 'मृत्य वे त्वा ददामीति' अर्थात मैं तुम्हें मृत्यु को देता हूँ, को शिरोधार्य करके यम के द्वार पर चला जाता है, जहाँ वह तीन दिन तक भूखा-प्यासा रहकर यमराज के घर लौटने की प्रतीक्षा करता है। उसकी इस साधना से प्रसन्न होकर यमराज उसे तीन वरदान माँगने की अनुमति देते हैं। नचिकेता इनमें से पहला वरदान यह माँगता है कि उसके पिता वाजश्रवा का क्रोध समाप्त हो जाए। नचिकेता के इसी कथन को आधार बनाकर कुँवर नारायणजी की जो कृति 2008 में आई, 'वाजश्रवा के बहाने', उसमें उन्होंने पिता वाजश्रवा के मन में जो उद्वेलन चलता रहा उसे अत्यधिक सात्विक शब्दावली में काव्यबद्ध किया है। इस कृति की विरल विशेषता यह है कि 'अमूर्त' को एक अत्यधिक सूक्ष्म संवेदनात्मक शब्दावली देकर नई उत्साह परख जिजीविषा को वाणी दी है। जहाँ एक ओर आत्मजयी में कुँवरनारायण जी ने मृत्यु जैसे विषय का निर्वचन किया है, वहीं इसके ठीक विपरीत 'वाजश्रवा के बहाने' कृति में अपनी विधायक संवेदना के साथ जीवन के आलोक को रेखांकित किया है। यह कृति आज के इस बर्बर समय में भटकती हुई मानसिकता को न केवल राहत देती है, बल्कि यह प्रेरणा भी देती है कि दो पीढ़ियों के बीच समन्वय बनाए रखने का समझदार ढंग क्या हो सकता है।

प्रकाशित कृतियाँ

कविता संग्रह - चक्रव्यूह (1956), तीसरा सप्तक (1959), परिवेश–हम-तुम (1961), अपने सामने (1979), कोई दूसरा नहीं (1993), इन दिनों (2002), कविता के बहाने(1993),।

खंड काव्य - आत्मजयी (1965) और वाजश्रवा के बहाने (2008)।

कहानी संग्रह - आकारों के आसपास (1973)।

समीक्षा विचार - आज और आज से पहले(1998), मेरे साक्षात्कार (1999), साहित्य के कुछ अन्तर्विषयक संदर्भ (2003)।

संकलन - कुंवर नारायण-संसार(चुने हुए लेखों का संग्रह) 2002, कुँवर नारायण उपस्थिति (चुने हुए लेखों का संग्रह)(2002), कुँवर नारायण चुनी हुई कविताएँ (2007), कुँवर नारायण- प्रतिनिधि कविताएँ (2008)

पुरस्कार सम्मान

कुँवर नारायण को वर्ष 2005 के ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। छह अक्टूबर को राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल ने उन्हें देश के सबसे बड़े साहित्यिक सम्मान से सम्मानित किया।

ज्ञानपीठ के अलावा कुँवर नारायण को साहित्य अकादमी पुरस्कार, व्यास सम्मान, कुमार आशान पुरस्कार, प्रेमचंद पुरस्कार, राष्ट्रीय कबीर सम्मान, शलाका सम्मान, मेडल ऑफ वॉरसा यूनिवर्सिटी, पोलैंड और रोम के अन्तर्राष्ट्रीय प्रीमियो फेरेनिया सम्मान और 2009 में पद्मभूषण सम्मान से सम्मानित किया गया।

केदारनाथ सिंह

इस प्रकार आधुनिक हिंदी खड़ी बोली कविता ने भी अल्प समय में उपलब्धि के उच्च शिखर पर किए हैं। क्या प्रबंध काव्य, क्या मुक्तक काव्य, दोनों में हिंदी कविता ने सुंदर रचनाएं प्राप्त की हैं। गीति-काव्य के क्षेत्र में भी कई सुंदर रचनाएं हिंदी को मिली हैं। आकार और प्रकार का वैविध्य बरबस हमारा ध्यान आकर्षित करता है। संगीत-रूपक, गीत-नाटय वगैरह क्षेत्रों में भी प्रशंसनीय कार्य हुआ है। कविता के बाह्य एवं अंतरंग रूपों में युगानुरूप जो नये-नये प्रयोग नित्य-प्रति होते रहते हैं, वे हिंदी कविता की जीवनी-शक्ति एवं स्फूर्ति के परिचायक हैं।

केदारनाथ सिंह (7 जुलाई 1932–19 मार्च 2018), हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि व साहित्यकार थे। वे अज्ञेय द्वारा सम्पादित तीसरा सप्तक के कवि रहे। भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा उन्हें वर्ष 2013 का 49वां ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया था। वे यह पुरस्कार पाने वाले हिन्दी के 10वें लेखक थे।

जीवन परिचय

केदारनाथ सिंह का जन्म 7 जुलाई 1934 ई. को उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के चकिया गाँव में हुआ था। उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से 1956 ई. में हिन्दी में एम.ए. और 1964 में पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। उनका निधन 19 मार्च 2018 को दिल्ली में उपचार के दौरान हुआ। कुछ वक्त गोरखपुर में हिंदी के प्रध्यापक रहे। उन्होंने जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा केंद्र में बतौर आचार्य और अध्यक्ष काम किया था।

योगदान

केदारनाथ सिंह की प्रमुख काव्य कृतियां 'जमीन पक रही है', 'यहां से देखो', 'उत्तर कबीर', 'टालस्टॉय और साइकिल' और 'बाघ' हैं। उनकी प्रमुख गद्य कृतियां 'कल्पना और छायावाद', 'आधुनिक हिंदी कविता में बिंबविधान' और 'मेरे समय के शब्द' हैं।

मुख्य कृतियाँ

कविता संग्रह
अभी बिल्कुल अभी (1960)
जमीन पक रही है (1980)
यहाँ से देखो (1983)
बाघ (1996) (पुस्तक के रूप में)
अकाल में सारस (1988)
उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ (1995)
तालस्ताय और साइकिल (2005)
सृष्टि पर पहरा (2014)
आलोचना
कल्पना और छायावाद
आधुनिक हिंदी कविता में बिंबविधान
मेरे समय के शब्द
मेरे साक्षात्कार
संपादन
ताना-बाना (आधुनिक भारतीय कविता से एक चयन)

समकालीन रूसी कविताएँ
कविता दशक
साखी (अनियतकालिक पत्रिका)
शब्द (अनियतकालिक पत्रिका)

पुरस्कार

1989 में उनकी कृति 'अकाल में सारस' को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था। इसके अलावा उन्हें व्यास सम्मान, मध्य प्रदेश का मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, उत्तर प्रदेश का भारत-भारती सम्मान, बिहार का दिनकर सम्मान तथा केरल का कुमार आशान सम्मान मिला था। वर्ष 2013 में उन्हें प्रतिष्ठित ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। इस पुरस्कार से सम्मानित होने वाले वह हिन्दी के 10वें साहित्यकार थे।

❐❐❐